इतिहास

अमृत राय

प्रथम संस्करण नवंबर १९४७

प्रकाशक

अमृतराय

हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस

इलाहाबाद

मुद्रण

सरस्वती प्रेस

बनारस

प्रच्छदपट

माखन दत्तगुप्त

वर्णलिपि

कृष्णचंद्र श्रीवास्तव

प्रच्छदपट-मुद्रण

भारत फोटोटाइप स्टूडियो

७२।१ कॉलेज स्ट्रीट,

कलकत्ता

ब्लॉक-निर्माण

रिप्रोडक्शन सिंडीकेट

७।१ कार्नवालिस स्ट्रीट

कलकत्ता

टी० एन० लक्ष्मणराव, आर्टिस्ट,

रीगल बिल्डिंग,

बंबई १

*

मूल्य अढ़ाई रुपया

जीवन-सहचरी सुधा को

अवशेषे सब काज सेरे
आमार देहेर रक्ते नतुन शिशु के
करे जाबो आशीर्वाद

तारपर होबो इतिहास ।

—सुकान्त भट्टाचार्य

सुमेर के बाप कानूनगो थे। उन्होंने गाँव के प्रायमरी स्कूल में उसकी आना दो आना महीना फीस दी हो तो उसकी बात अलग है, मगर दर्जा चार के बाद से आज तक (अब तो वह एम० ए० में पढ़ रहा है) उसकी पढ़ाई अपने पौरुख से हुई है। उसके बाप को उसका इतना पढ़ना मंजूर नहीं था, अगर कहें कि खलता था तो भी कुछ ज्यादा झूठ न होगा गो कि जब उसको पढ़ाई के मद में उनकी गाँठ से कानी कौड़ी भी नहीं जाती थी तब खलने की तो कोई बात थी नहीं। बहरसूरत वह इतनी पढ़ाई को गलत समझते थे जिससे किसी को अपच हो जाय। यही तो हमेशा कहते थे वह कि आजकल जिसे देखो पढ़ाई का अपच है, जमाने की रफ्तार ही कुछ बेढंगी है, हवा खराब हो गयी है, नहीं तो (अपने ही हमउम्र हमखयाल किसी खबीस आदमी को सम्बोधित करके कहते) आप ही बताइए हम लोग क्या किसी से बुरे हैं ? दिल में, दिमाग में, तन्दुरुस्ती में। किससे खराब हैं हम लोग ! नहीं तो ये आज कल के लड़के हैं; सूरत न शकल कुत्ते की नकल, एक झाँपड़ कसकर रसीद कर दो तो मुँह से खून फेंक दें। साहब तन्दुरुस्ती हजार नियामत है। लेकिन आजकल खराब तन्दुरुस्ती तो फैशन में शुमार है साहब, फैशन में। आज वह कलजुग लगा है कि अच्छा गठीला बदन गँवारपन समझा जाता है, किसी के जरा भरे हुए कल्ले देखे कि लगे फबतियाँ कसने, यह नहीं कि कुछ नसीहत ही लें उससे। दूर क्यों जाइए, मेरे ही लड़के को देखिए न, सुमेर को। कोई उसको देखकर कह सकता है कि मेरा लड़का है ?...लेकिन है।... और मैं तो कहता हूँ साहब कि तन्दुरुस्ती बिगड़े न तो हो क्या ! आपने

किताबों के वह पहाड़ देखे हैं जो आजकल लड़कों को अपने सर पर लेकर घूमने पड़ते हैं, मुझे तो उसे देखकर गश आता है।

सुमेर के कानूनगो बाप चाहते थे कि सुमेर भी कानूनगो का इम्तहान पास करे। कानूनगो साहब मिलने जुलने वाले आदमी थे और उन्हें अपनी ही वजह से इस बात का भरोसा था कि जरूर कहीं न कहीं सुमेर का सिलसिला जम जाता। लेकिन बकौल उनके जिसके भाग में दर-दर की ठोकरें खाना लिखा होता है उसे भगवान भी नहीं बचा सकते।

वही ठोकरें अब सुमेर खा रहा था। शादी काफी जल्दी यानी जब वह मैट्रिक में था तभी हो गयी थी। अब वह एम० ए० में था। अगर वह कमासुत होता तो अब तक अपना और अपने बाल बच्चों का ही नहीं, घर भर का पेट पालता ; लेकिन उसे किताबों से झख मारने से फुरसत हो तब तो।...लेकिन खैर भाई, यह तो जमाने की रफ्तार है, किसी को कुछ कहना ठीक नहीं, अब लोग अपने ही बाल-बच्चों का बोझ सँभाल लें यही बहुत है......

लिहाजा दो साल से वह सरला और नरेश को भी घर से हटा लाया है और अब शहर में चार रुपये किराये की एक कोठरी लेकर रहता है। बीस-बीस रुपये के तीन ट्यूशन करता है और दस-पन्द्रह रुपये लेख-वेख लिखकर कमा लेता है। जिन्दगी ने एक राह पकड़ ली है। राह कँकरीली भी हो तब भी राह है, पौरुखवाला इन्सान अपाहिज की तरह खटिया तो नहीं तोड़ रहा है—सुमेर को इसी बात का तसकीन है। पढ़ता है और पढ़ाता है। सरला है जो उसे प्यार करती है, दुख-सुख में साथ देती है,

ढाढ़स बँधाती है। नरेश है जो अच्छा रहता है तो दिन भर ऊधम मचाया करता है और उसी में बड़ा प्यारा मालूम होता है, लेकिन आजकल बीमार है, टाइफाइड के जहरीले पंजे में गिरफ्तार है तो खटोले पर पड़ा हुआ है, चेहरा लाल है, शरीर जल रहा है, आँखें बन्द हैं और हाथ बेचैनी से माँ को ढूँढ़ रहे हैं और माँ सिर पर बर्फ की पट्टी रख रही है और बाप पास ही चारपाई पर केहुनियों के बल लेटा एक लेख लिख रहा है, एक स्थानीय पत्र के लिए, जिससे उसे पैसे मिलेंगे, नरेश के लिए अनार लाने हैं।

२

लोग कहते हैं कि समाज में अपनी इज्जत बढ़ाने के लिए लोगों से मिलना-जुलना जरूरी होता है, लेकिन यह बात कुछ ठीक नहीं मालूम होती, क्योंकि बहुत से लोग सुमेर को शायद इसीलिए जानते हैं कि वह कहीं आता-जाता नहीं, किसी से मिलता-जुलता नहीं। कुछ लोग तो 'फिलासफर' कहकर अपने मन को समझा लेते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि गणित विषय ही ऐसा है, इन्सान को निकम्मा बना देता है, दुनिया के किसी काम का नहीं रखता। कुछ लोग कहते हैं अपने को लगाता है। बहरहाल किसी ने कभी यह पता लगाने की जरूरत नहीं समझी कि उसकी जिन्दगी में अवकाश के क्षण हैं भी या नहीं। हज़रत सफ़शिकन की मैयत पर सर धुनने वाले नवाब साहब को अगर कोई यह समझाने की कोशिश करता कि दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें अपनी प्यारी बीवी की मज़ार पर दो आँसू गिराने की भी फ़ुर्सत नहीं होती तो वह कहते—क्या चण्डूखाने की उड़ायी तुमने मियाँ।

सुमेर के बारे में लोगों के तरह-तरह के खयाल थे। उसकी चाल-ढाल, वेशभूषा सब पर लोग टीका-टिप्पणी किया करते। कुछेक खास मनचले लोग तो यहाँ तक कहते कि साला जानबूझकर औघड़ की तरह शकल बनाये घूमता है, 'टु अट्रैक्ट द नोटिस ऑव् द लेडी स्टूडेन्ट्स, यू डोंट नो

दैट !'* गरज यह कि लोग बहुत दूर दूर की कौड़ी लाते थे। भलमंसी की निगाहों से देखिए तो उसकी वेशभूषा कुछ खास न थी—खद्दर का कुर्ता, पाजामा और चप्पल। कम खर्च बालानशीं। कपड़े का मसला इससे सस्ते ढंग से हल ही नहीं हो सकता। मगर लोग हैं कि उसमें भी किसी साजिश की तलाश करते हैं। यह जरूर है कि सुमेर की दाढ़ी अक्सर बढ़ी रहती जो उसके जर्द चेहरे पर गहरी हरी दूब सी जान पड़ती। उसकी दाढ़ी ही तो लोगों की आँख का काँटा हो गयी। लोगों को यकीन हो गया कि सुमेर बीसवीं सदी का, नये वज़ा-क़ता का कन्हैया बनना चाहता है। डान जुआन। रासपुटिन। जितने मुँह उतनी बातें थीं।

२

कुँअर उदयबीरनारायण सिंह सुमेर के सहपाठी थे। मध्यभारत के किसी बड़े जमींदार के कुँअर थे। अंग्रेजी शानशौकत से रहते थे, बेहतरीन कपड़ों के सूट पहनते थे, अलग बँगला लेकर रहते थे। बँगला बिलकुल अंग्रेजी ढंग से सजा था, मिलने जुलने वालों का कमरा, सोने का कमरा, पढ़ने का कमरा, खाने का कमरा और इसी तरह तमाम कमरे थे और सभी कमरों में बेहतरीन मैटिंग्स और कारपेट और बिल्कुल नये डिजाइन का स्ट्रीम-लाइन फर्नीचर। दीवारों पर बड़े कीमती फ्रेमों में जड़ी हुई कुछ योरोपियन रमणियों की नंगी तसवीरें थीं।

कुँअर साहब अच्छे गोरे-चिट्टे खूबसूरत जवान थे, दिल के भी गीन कम न थे। लिहाजा हल्का सा पीने-पिलाने का भी शौक था। इश्क ऐसी चीज है कि अकेले उसमें कुछ लुत्फ नहीं आता। दो-चार दोस्त जब तक हमारे गरेबाँ में सर डालकर यह नहीं देखते कि हमारे नन्हें दिल की धड़कन कैसी है, तब तक इश्क भी भला कोई इश्क है। जो आदमी अपने चार दोस्तों को मुहब्बत की इस कँटीली राह का

* 'लड़कियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए, तुम क्या जानो।'

हमराही नहीं बना सकता, उसके लिए बेहतर है कि वह इस मर्ज को ही गले न लगाये और कमरे की छत से चुटिया बाँधकर कैलकुलस के सवाल हल करे !

कुँअर साहब की जिंदगी अच्छी चल रही थी, पैसा चीज ही ऐसी है। लेकिन इधर कुछ दिनों से बेचारे की उस जीवन-धारा मे थोड़ी रुकावट आ गयी है। राजा साहेब की इच्छा है कि उनके कुँअर साहब आई० सी० एस० पास करें। लिहाजा कुँअर साहब आई० सी० एस० का तैयारी कर रहे हैं और इसलिए आजकल धमाचौकड़ी जरा कम हो गयी है, इम्तहान के अब थोड़े ही दिन और हैं।

कुँअर साहब सुमेर को अच्छी तरह जानते थे, कुछ तो इसलिए कि प्रेम की दुनिया में वे सुमेर को अपना रकीब मान बैठे थे और उनके दिल से यह खयाल निकालना नामुमकिन था। उन्हें किसी से मालूम हो गया था कि सुमेर बालबच्चेदार आदमी है—मगर क्या बालबच्चेदार आदमी मुहब्बत नहीं करते ?...

अपने इस परिचय के अलावा कुँअर साहब यह भी जानते थे कि अपने आई० सी० एस० के इम्तहान के लिए भी उन्हें सुमेर से मदद मिल सकती है। न जाने किस झोंक मे आकर वह चार सौ नम्बर की गणित ले बैठे थे (शायद किसी ने उनसे कह दिया था कि गणित में बहुत 'सॉलिड' नम्बर मिलते हैं !) और अब उनकी आँखों के आगे अँधेरा छाया हुआ था, तितलियाँ उड़ रही थीं, उनकी समझ ही में न आता था कि अब किया क्या जाय।

और तभी उन्हें सुमेर का ध्यान आया।

सुमेर के पास न पैसा था न वक्त। लिहाजा यह तय पाया कि सुमेर पिछले छ साल के आई० सी० एस० के गणित के पर्चे पूरे हल करके कुँअर साहब को दे देगा और कुँअर साहब सुमेर को सौ रुपये देंगे।

४

नरेश की बीमारी आगों के कर्ज की तरह लगातार बढ़ती जा रही

थी। तीन हफ्ते तो कबके पूरे हो चुके थे, अब चौथा हफ्ता पूरा होने आ रहा था।

सुमेर को लेख के रुपये मिले तो उसने डाक्टर बुलाकर नरेश को दिखलाया। डाक्टर ने तत्काल कुछ खास कहा नहीं। दवाई का नुस्खा लिखकर सुमेर को दे दिया और सिर्फ इतना कहा कि बहुत एहतियात करने की जरूरत है, 'द चाइल्ड इज़ नॉट आउट ऑव् डेंजर'*।

तभी सुमेर को कुँअर उदयवीरनारायण सिंह वाला काम मिला और उसे बड़ी खुशी हुई। उसने दिन-रात एक करके हफ्ते भर में ही तमाम पर्चे हल कर डाले। रात में तो काम का सवाल ही न उठता, रात तो नरेश की पाटी पकड़कर बैठे-बैठे ही बीत जाती। नींद पलकों पर सीसे की ईंट की तरह रखी रहती, मगर आँखें पहरेदार की तरह जागती रहतीं। कभी पलभर को अगर आँख लग जाती तो वह चौंककर जाग जाता। यही हाल सरला का था।

दिन को सुमेर की आँखें लाल रहतीं, जलती रहतीं। मगर वह सवाल हल करने में लगा रहता। आखिर को जब सातवें दिन जाकर तमाम सवाल हल हो गये तो उसने चैन की एक लम्बी साँस ली।

तमाम हल सवालों को देखकर कुँअर साहब की बाँछें खिल गयीं। सोचा, अब तो पाला मार ही लिया, अब कौन साला रोक सकता है। सवाल आयेंगे तो इन्हीं में से न घूम-फिरकर—कि सेटर अपने दिमाग से सवाल पैदा करेगा!! यह विचार ही उन्हें उपहासास्पद लगा कि वह ऐसा भी कर सकता है।

किस्साकोताह वह बहुत खुश हुए, बोले—सुमेर जी मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ, आपने इस समय मेरी बड़ी सहायता की। अब तो मुझे कुछ-कुछ उम्मीद हो चली है।

---

*'बच्चा खतरे से बाहर नहीं है।'

सुमेर ने बहुत सादगी से जवाब दिया—मुझे बहुत खुशी होगी अगर मेरी ज़ात से आप को कोई फायदा पहुँच सके।

कुँअर साहब ने कहा—अरे साहब यह तो आप की मेहरबानी है।

फिर दो चार मिनट इधर उधर की बातें हुईं, कुँअर साहब के इम्त-हान की, यूनिवर्सिटी की, लेकिन बातों का जखीरा जल्दी ही चुक गया और एक भद्दी सी खामोशी छा गयी।

तब कुँअर साहब ने पास ही रखे अटैची केस में से दस दस रुपये के पाँच नोट निकालकर सुमेर की ओर बढ़ाते हुए कहा—यह लीजिए सुमेर जी, माफी चाहता हूँ अभी और नहीं हैं।

सुमेर ने दुनिया देखी थी, छल और कपट के एक से एक छली और कपटी रूप देखे थे, जानता था कि उसका सबसे प्रचलित रूप है—तेल सी चिकनी मुस्कराहट और दीनता का प्रदर्शन। बोला—तो अभी रहने दीजिए, जल्दी क्या है; फिर ले लूँगा।

'कुँअर साहब ने जब यह देखा कि सुमेर ऐसा रोग नहीं है जो बहलाने से बहल जाय तो अपने सच्चे रूप में प्रकट हुए—पचास रुपये कोई बुरी रकम तो नहीं है।

जैसे कसे हुए मृदंग पर पूरी थाप पड़ी, गूँज निकली—मैं आपका मतलब नहीं समझा कुँअर साहब।

कुँअर साहब ने उस अपनापे से कहा जिसकी सफलता दुराव बनाये रखने में ही है—लीजिए लीजिए, कम नहीं दे रहा हूँ।

सुमेर ने कुछ कहना चाहा लेकिन कुँअर साहब ने जैसे उसे बोलने का मौका न देने के लिए ही कहा—समझ गया, मैं आपकी बात समझ गया...लेकिन इसी बार से तो बस नहीं है, मैं फिर कभी आपका जी खुश कर दूँगा।

कुँअर साहब के शब्द बाँस की एक बहुत पतली सटकन की तरह जाकर सीधे सुमेर के दिल पर चिपके और अलग हो गये, साँट उभर आयी—

एक बैंगनीमायल लाल, उभरी हुई रग की तरह एक सीधी लकीर, निर्धन व्यक्ति के कुचले हुए स्वाभिमान की क्षुब्ध, सर्प ललकार—मेरा जी खुश करने की कोशिश आप न करें कुँअर साहब ; मैंने मेहनत की है ; मैं सिर्फ उसकी ठहरायी हुई मजदूरी चाहता हूँ।

ललकार सुनकर कुँअर साहब का सोया हुआ क्षात्र तेज जाग पड़ा और उन्होंने राजसी तेवर के साथ कहा—मैं इससे ज्यादा एक पाई भी न दे सकूँगा।

इसके बाद सुमेर ने कुछ कहा नहीं। उसने आगे बढ़कर मेज पर से अपनी कापी उठायी...एक पल को बीमार नरेश की तस्वीर उसके मन में कौंध गयी और उसके हाथ रुके, लेकिन एक पल ही के लिए...उसने अपनी कापी उठायी और उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। कुँअर साहब ने उसको रोकने की कोशिश की, लेकिन बात खत्म हो चुकी थी, सुलह के रास्ते बन्द हो गये थे।

सुमेर के चले जाने पर कुँअर उदयवीरनारायण सिंह अपने को कोसने लगे—क्या पचास रुपये के पीछे बना-बनाया काम बिगाड़ दिया।......

लेकिन असल बात तो यह है कि कुँअर साहब अपनी आदत से मजबूर थे। मसल मशहूर है, बन में मोर नाचा किसने देखा...बँगले पर खर्च किया जाय, पीने-पिलाने पर खर्च किया जाय, कोट-पतलून पर खर्च किया जाय तो और कुछ न सही मगर इतना तो है ही कि चार जन कहते हैं कि हाँ साहब, कुँअर साहब आदमी शौकीन हैं, दिल के बादशाह हैं......।

५

रात के दो बजे थे। नरेश की हालत अब तब हो रही थी। बर्फ की पट्टी रखने पर भी बुखार एक सौ छ डिग्री से नीचे नहीं उतर रहा था। जब से सुमेर ने कमरे के कोने में रखी टिमटिमाती लालटेन की रोशनी में थर्मामीटर देखा था, तब से उसकी उद्विग्नता की सीमा न थी, लेकिन वह ऊपर से शान्त दिखने की कोशिश करता हुआ बैठा था।

सरला से और न रहा गया तो उसने कहा—तुम बच्चे को बचाना चाहते हो कि नहीं ?

सुमेर चुप रहा।

सरला की उद्विग्नता ने एक बार फिर उससे जवाब तलब किया—तुम बच्चे से हाथ धोने ही पर तुले हो क्या ?

सरला की आवाज भर्रायी हुई थी। सुमेर इस बार भी चुप रहा। फिर धीरे से उठा और जाकर सरला के आँसू अपनी धोती के छोर से पोंछने लगा और बोला—रानी, तुमसे मेरी कोई बात नहीं छिपी है।

सरला ने उसके सीने में मुँह धँसाते हुए कहा—मैं जानती हूँ...... लेकिन हमें अपने नरेश की जान बचानी ही होगी। मैं उसे इस तरह मरने नहीं दे सकती।

—धीरे बोलो सरला, नरेश जग रहा है।

—अब और क्या बाकी है। तुम उसकी आँखें नहीं देखते ?

—उसकी आँखों में मौत का डर है; लेकिन उसकी नब्ज चल रही है।

—हूँ

—अभी उसमें जान बाकी है, घबराओ मत, अभी वह जियेगा। उम्मीद मत हारो।

—तुम जाओ डाक्टर को बुला लाओ, किसी तरह बुला लाओ, हाथ जोड़कर, पैर पड़ कर—

—तुम बात नहीं समझतीं सरला।

—मैं सब समझती हूँ।

—तुम कुछ नहीं समझतीं। इस वक्त कोई डाक्टर बिना पैसे लिये बात नहीं करेगा—

—उसके भी बाल-बच्चे होंगे...

—हाँ होंगे, जरूर होंगे, लेकिन वह उसके बच्चे होंगे। नरेश उसका बच्चा नहीं है।

यह अनुमानों की नहीं वास्तविकताओं की दुनिया थी, जिसमें सरला को सुमेर ने ला पटका था। उसके पास कोई जवाब नहीं था, लेकिन उसकी अकिंचन ममता जवाब माँग रही थी। वह फूट-फूटकर रोने लगी, और फिर रोते-रोते ही चिल्लाकर बोली—तुम मुझसे बहस मत करो, इस वक्त मुझसे बहस मत करो। तुम उसकी आँखें देखो आँखें, कैसे कैसे कर रहा है...तुम जाओ, लाओ डाक्टर को, यहाँ से जाओ अभी जाओ बैठो मत अब—

डाक्टर ने ज्यादा बात भी नहीं की। कायदा गरीब अमीर सबके लिए एक है।

लौटते वक्त उसकी आँखों के आगे सिर्फ एक तसवीर थी, मैनापुर के राजकुमार उदयवीरनारायण सिंह और उनकी वह चिकनी चिकनी सी मुस्कराहट और उसकी तरफ बढ़ता हुआ उनका वह गोरा गोरा चिकना चिकना हाथ जिसमें पचास रुपये थे...

कोठरी में पैर रखते ही आग के भभके की तरह मौत के सन्नाटे ने उसके मुँह पर तमाचा मारा।

सरला नरेश के शरीर पर झुकी रो रही थी। सरला का शरीर यों झुका हुआ था कि लगता था कि उसके डैने निकल आये हैं और वह नरेश को उन्हीं डैनों की आड़ में छुपा लेना चाहती है...

अब नरेश को डैनों की आड़ में ले लेना बहुत आसान था।

सुमेर की आँखों में आँसू आये, मगर नहीं आये; वैसे ही जैसे जलते हुए तवे पर पानी की बूँदें गिरती हैं, मगर नहीं गिरतीं!

जनवाणी '४७]

इलाहाबाद से बनारस आनेवाली गाड़ी आज वहीं से डेढ़ घण्टा लेट थी। इसीलिए भदोही के आगे आकर जब वह फिर धीमी होते होते रुक गयी तो कमल मन ही मन जलकर खाक हो गया। बोला—कितने नालायक हैं साले। वक्त से गाड़ी भी ले आ ले जा नहीं सकते, बैलगाड़ी बनाकर रख दिया है। 'अब तो लगता है सत्तू-पिसान बाँधकर चलना पड़ेगा।' और उसके मुख पर मुस्कराहट की एक पतली रेखा खिंच गयी। उसने खिड़की से सिर निकाला कि देखें क्या गड़बड़ है।

—सिगनल तो ठीक है। लेकिन यह क्या? लोग यह पीछे की तरफ भागे कहाँ जा रहे हैं? शायद कोई गाड़ी के नीचे आ गया।

कमल भी डब्बे से उतरकर भीड़ के साथ चला। पहुँचकर देखा—

एक साँवला-सा आदमी कटा पड़ा है। शायद अनाहार से उसकी मांस-पेशियाँ झूल गयी हैं लेकिन यों वह तीस-बत्तीस से ज्यादा का नहीं मालूम पड़ता। शायद अच्छी तरह पैर फैलाकर दोनों पटरियों पर चित लेटा था क्योंकि उसकी दोनों टाँगें कटी हुई हैं और चेहरे का ऊपरी भाग लेते हुए सिर बुरी तरह कुचल गया है और अन्दर का भेजा बाहर आ गया है।

यों तो देखने में टाँगों की हड्डी कट जाने के कारण निराधार झूलते मांस के लाल लोथड़े के बीच से झाँकती हुई सफेदी भी कम वीभत्स नहीं है, लेकिन जिस तरह रेल के पहिये उसके सिर और मुँह पर से गुजरे हैं और जिस तरह उसका सिर एक अजीब ऐंठन के साथ एक ओर को लटक गया है उससे मृत व्यक्ति की मुद्रा में एक वक्रता आ गयी है।

कमल ने अपने मन में कहा—हमारी तरफ कितनी नफरत से देखती है यह लाश, गोया हमीं उसकी जान लेनेवाले हों ! अगर कहीं उस आखिरी पल में डर की वजह से उसकी ये आँखें मुँद न गयी होतीं—

थोड़ा सिहर उठा कमल, जैसे सचमुच वे आँखें फटी ही रह गयी हैं और उनमें से नफरत की चिनगारियाँ उड़ रही हैं जिनसे उसका शरीर सुलग रहा है। फिर उसे लगा कि वह नफरत की चिनगारियाँ नहीं, नफरत के भाले हैं, बहुत तेज, सुई की तरह नोकीले, जरा-से में शरीर के आरपार हो जानेवाले, चमाचम चमकते हुए भाले जो पूरब-पच्छिम-उत्तर-दक्खिन हर दिशा से उसकी ओर बढ़ रहे हैं...

लेकिन दूसरे ही पल कमल ने कहा—छिः ! आदमी के दिमाग में भी क्या-क्या तसवीरें आती हैं। उसके आँखें हैं कहाँ ! वह तो बन्द हैं—जैसा कि होना ही चाहिए मुर्दे की आँखों को।

अब कमल ने चैन की साँस ली लेकिन अब भी उसकी साँस कुछ जोर-जोर से चल रही थी।

उसने फिर उस लाश को और गौर से देखा—नङ्गी। और उसके दिमाग में घूम गया—दुनिया में यों ही तो आता है आदमी...

लेकिन फिर लाश पर जगह-जगह जमे हुए कत्थई और काले खून को देखकर उसने कहा—गलत है। दुनिया में आदमी यों नहीं आता। तब उसका खून टेसू के फूल की तरह लाल होता है—यानी असली खून की तरह। यह भी कोई खून है—काई-सा, काला, मटीला। तब उसमें फौवारे की तेजी होती है। ऐसा नहीं होता वह—बेजान, बेहिस। तब उसमें गर्मी होती है—जहाँ-तहाँ जम नहीं जाया करता बर्फ की तरह। तब जिन्दगी को देखने की उमङ्ग होती है आदमी में जो उसके खून को अपनी लाली देती है—यह नफरत नहीं जो उसके खून को काला कर दे, अँधेरे की तरह, कालिख की तरह, मिट्टी की तरह, मौत की तरह, नफरत की तरह।

तभी कमल को लगा कि मुर्दा साँस ले रहा है—उसकी छाती लोहार की भाथी की तरह धक्के के साथ ऊपर-नीचे हो रही है—जैसे उसका

दम अब टूट ही रहा हो और साँस भारी चलने के बावजूद वह रुक-रुककर बड़ी पतली आवाज में कह रहा हो—

'देखते क्या हो! मेरी क्या उम्र थी मरने की—तीस-बत्तीस कोई मरने की उम्र होती है?...तुम समझोगे रेल के पहिये ने मेरी जिन्दगी का सूत तोड़ दिया। हो सकता है तुम सही हो। हो सकता है उस सूत का आखिरी रेशा रेल के पहिये ने ही तोड़ा हो। लेकिन सच पूछो तो मेरी जिन्दगी का सूत बहुत पहले ही टूट चुका था, तभी जब मैं भूख से लथ-पथ इन्हीं पटरियों पर आकर ढेर हो गया था।'

और तभी कमल अपने डब्बे की तरफ लौट पड़ा—गाड़ी ने सीटी दे दी थी। उसकी आँखों में, उसके दिल और दिमाग में एक ही तसवीर थी।

रास्ते में, डब्बे में से सिर निकालकर एक वयस्क आदमी ने उससे पूछा—मर गया?

कमल ने कुछ सुना तो लेकिन जवाब नहीं दिया। आगे बढ़ गया।

उसने देखा डब्बे के अन्दर से एक दूसरे सज्जन डब्बे के बाहर खड़े एक चालीसवर्षीय, बहुत दुबले-पतले, छोटे से टिकट-चेकर से, जिसकी मूँछें बड़ी-बड़ी थीं और आधी पक चुकी थीं, पूछ रहे थे—कब मरा?

और कमल ने टिकट-चेकर को एक दूर खड़े पुलिसमैन की ओर इशारा करके कहते सुना—यह जमदूत कह रहा था, कल का कटा पड़ा है। लेकिन तुम्हीं बताओ यह भी कोई बात है—जिन्दा आदमी को पकड़ने में तो ऐसी मुस्तैदी और मुर्दा दो-दो रोज तक पड़ा सड़ता रहे! अकाल मृत्यु हो गयी, बेचारा! कबीरदास ने ठीक ही कहा है: चलती चक्की देखि के दिये कबीरा रोय।

कमल का ध्यान इस ओर ज्यादा न था। तरह-तरह की आवाजें उसके कान में पड़ रही थीं और वह अपने डब्बे की ओर बढ़ा जा रहा था। उसने सुना कोई स्त्री, जिसे घर पहुँचने की बड़ी जल्दी थी, कह रही थी—बारह तो यहीं बज गये।

दूसरे किसी ने शिकायत के लहजे में कहा—न जाने कब का मरा पड़ा है। आज क्यों गाड़ी रोक दी ?

खेत की डाँड़ों पर से गुजरते एक आदमी ने किसी को जवाब देते हुए कहा—पागल था।

कमल ने अपने डब्बे के अन्दर घुसते हुए कहा—पागल तो था ही, नहीं यों मरता !

एक अधेड़ सज्जन ने कमल की ओर मुखातिब होते हुए कहा—आदमी की जान बहुत सस्ती हो गयी है। लोग पतिङ्गों की तरह मर रहे हैं......

कमल के मुँह से अनायास निकल गया—कौन जाने कल हम-आप भी उन लोगों में न हों।

उन सज्जन को जैसे किसी ने कसकर छाती में घूँसा मार दिया हो, बोले—क्या कहते हो बेटा, परमात्मा का नाम लो।

कमल ने जवाब में कुछ नहीं कहा, सोचा, सबको अपनी अपनी ही पड़ी है।

मुर्दे के चेहरे पर उसने जो बर्फानी नफरत देखी थी, उससे उसका सारा शरीर, रोम-रोम जल रहा था जैसा कि बर्फ से ही जल सकता है।

हंस, '४३]

शराफत के पुतले, रिटायर्ड नायब तहसीलदार ठाकुर दिग्विजय सिंह अहियापुर ही में रहते हैं। आजकल ए० आर० पी० के वार्डन हैं और इसी हैसियत से मुहल्ले के लोगों को खाना देने की जिम्मेदारी उनकी है और सच पूछिए तो उनके रहते यह सेहरा और किसी के सर बँध भी नहीं सकता। क्योंकि नायब तहसीलदारी के पद ने लोगों को .खुश रखने की कला में उन्हें बहुत निपुण बना दिया है। हम लोगों को अगल-बगल रहते छः महीने से ऊपर हो गये हैं और इसीलिए अब आपस में थोड़ा-बहुत घरोपा भी हो गया है। ठाकुर साहब की पत्नी उम्र में मेरी माँ के बराबर होंगी। मेरी ननिहाल के पास ही एक गाँव में उनका भी मैका है। इसी रिश्ते से मैं उन्हें मौसी जी कहता हूँ और वह मेरी माँ को दीदी।

आज उनके घर पहुँचा तो देखा मौसी जी मसाला पीस रही हैं। मौसी जी ने मुझे देख पास पड़ी खाट पर बैठने के लिए कहा और एक फीकी मुस्कराहट के साथ लेकिन बड़े तपाक से पूछा—सुरेश, दीदी कहीं से चावल पा गयी हैं क्या ?

मैंने सवाल को ज्यादा न समझते और चौंकते हुए पूछा—क्यों ! क्या बात है मौसीजी !

मौसीजी की मुद्रा और गम्भीर हो गयी, मुझे समझाते हुए बोलीं—देखो तो, अपनों ही से तुम लोग कितना दुराव करते हो। यह तो मुझे कल पता लगा और सो भी यों ही अचानक कि तुम लोगों को चावल

चाहिए। तभी जब अबकी दो बोरे आये तो मैंने सोचा दीदी को भी दिखा लूँ। पसन्द आयेगा तो एकाध बोरा वह भी ले लेंगी। दिन तो ऐसे गाढ़े लगे हैं बेटा, कि पैसा देने पर भी आदमी चीज के लिए तरसकर रह जाता है।

मैंने कहा—भला इसमें भी कोई शक है! दिन तो सचमुच ऐसे ही लगे हैं। आसमान नहीं फट पड़ता यही गनीमत है।

चाची—भला अब भी आसमान फट पड़ने में कोई कोर-कसर है? अब और कौन-सी मुसीबत देखना चाहते हो?

मैं चुप हो गया। मौसीजी ने थोड़ी देर बाद फिर कहा—हाँ, तो मैंने उस दिन इसी के बारे में दीदी से कहा, लेकिन उन्होंने तो साफ इन्कार कर दिया। इसी से पूछती थी। चाहे इसे बुरी आदत कह लो चाहे भली, मुझसे यह नहीं होता कि कोई चीज मिले तो मैं उसे अकेले ही हड़प लूँ। अरे, ऐसे ही दिनों के लिए तो हित-मेल होते हैं बेटा। मैं तो यही जानती हूँ कि अपने से जो भलाई बन पड़े उसमें कभी कंजूसी न करे।

मैंने कहा—आप तो मुझे शर्मिन्दा करती हैं जैसे मैं आपको जानता न होऊँ।

थोड़ी देर की खामोशी के बाद मौसीजी ने कहा—तो वही बात थी। दीदी ने चावल नहीं लिया। न जाने क्यों!

मैंने कहा—हाँ, अब मैं तो कुछ जानता नहीं, जो कुछ करती हैं, अम्मा ही करती हैं। कहीं ये सब इन्तजाम मुझे करने पड़ जायँ तो पागल हो जाऊँ, भुरकुस निकल जाय। यह तो अम्मा ही का जीवट है। अब मालूम नहीं मौसीजी, उन्होंने क्यों मना करवा दिया।

तभी ठाकुर साहब ने, जो पास ही बैठे 'कल्याण' के जरिये भगवान् का साक्षात्कार कर रहे थे, अपनी दस साल की लड़की सुशीला को आवाज दी, जो चौके में बैठी अपनी बड़ी बहन का हाथ बटा रही थी और कहा—जरा मुट्ठी भर नये चावल तो ले आ।

फिर मेरी ओर मुखातिब होते हुए कहा—देखोगे कितने बारीक हैं ये चावल। बस, बासमती ही समझो।

जब सुशीला ने चावल लाकर मेरी हथेली पर रखे तो मैंने देखा चावल सचमुच बड़े बारीक और लम्बे थे। मैंने उन्हें देखते देखते पूछा—मुझे तो ज्यादा पहचान नहीं मौसीजी, लेकिन हैं तो सचमुच बहुत बारीक और लम्बे—पकने पर बड़ी अच्छी खील फूटती होगी?

ठाकुर साहब—क्या कहूँ, थाली जैसे खिल उठती है। एक एक दाना अलग होकर इतना खुशनुमा मालूम पड़ता है कि फिर न पूछो। और फिर इसकी मिठास और खुशबू का क्या कहना! कल यहीं खाना खाओ न?

मैं—जरूर-जरूर। यह तो मेरा ही घर है।

ठाकुर साहब—ऐसी मिठास है कि सूखा ही खाओ तो भी स्वाद आता है और खुशबू तो ऐसी कि घर-भर गमक उठता है, इतर की तरह।

मैं—मालूम नहीं, उन्होंने क्यों मना करवा दिया। मान लीजिए, उन्हें चावल मिल भी गया है कहीं से, तो भी एकाध बोरा और लेकर डाल लेने से कुछ बिगड़ थोड़े ही न जाता और उस पर से इतना नफीस चावल!

ठाकुर साहब—यही तो मैं भी कहता था।

मैं—पूछूँगा मैं।

ठाकुर साहब—मैं तो भाई, पहले अपने घर में दिया जलाता हूँ, फिर मस्जिद में। तुम्हारे घर को अपना ही समझता हूँ, इसलिए जोर देता हूँ, नहीं मुझे क्या जरूरत नहीं? मेरा घर तो अंधा कुआँ है, कितनी ही मिट्टी क्यों न डालो, पट नहीं सकता। ग्यारह आदमी खानेवाले हैं। दो रुपये का आटा मुश्किल से तीन जून चलता है।

मैं—सच? इतना?

ठाकुर साहब ने अपने सबसे छोटे लड़के की ओर इशारा करके मुस-कराते हुए कहा—सच नहीं तो क्या झूठ? इन्हें देखो। जुम्मा-जुम्मा आठ रोज के हैं आप और आपकी खुराक? महज मेरी दुगनी।

मैं—बड़े खराब हैं आप मौसाजी। झूठ-मूठ बेचारे को नजर लगाते हैं।

ठाकुर साहब ने जोर से हँसते हुए कहा—कुछ कारगर भी हो मेरी नजर। नजर लगती होगी औरों को। मेरे बच्चों पर तो उसका उल्टा ही असर होता है।

कुछ देर की खामोशी के बाद ठाकुर साहब फिर गम्भीर होते हुए बोले—तो जल्दी ही बता देना अपनी माँ से पूछकर। मुहल्ले-टोलेवाले दिन-रात घेरे रहते हैं। दो-दो, एक-एक रुपये का चावल तो न जाने कितने लोग ले गये। अब 'नहीं' भी तो नहीं करते बनता, मुहल्ले-टोले के लोग हैं। आपस में एक दूसरे का सहारा रहता है। चाहे थोड़ा ही थोड़ा दो, लेकिन देना सभी को पड़ता है। और फिर मेरी गर्दन तो और भी फँसी है। सब यही समझते हैं कि मेरे घर में कामधेनु बँधी है। जो चाहूँ सो कर सकता हूँ। चाहूँ तो सदाव्रत खोल दूँ। बड़े अजीब होते हैं सब।

मैं—हाँ, लोग सचमुच बड़े पागल होते हैं। लेकिन अपनी ओर से तो आप अच्छा ही करते हैं। सबकी भलाई होती है। कल खाना खाने आऊँगा तो अम्माँ से चावल के बारे में पूछता आऊँगा। चावल है तो सचमुच नफीस।

मैंने नमस्ते की और घर की ओर चला। रास्ते में सोचता रहा, अम्माँ भी अजीब हैं। ये लोग तो बेचारे हमारे लिए मरते हैं और उन्हें तो जैसे किसी बात का कोई खयाल ही नहीं।

घर पहुँचकर मैंने अम्माँ से कहा—अभी ठाकुर साहब के यहाँ गया था। तुमने शायद मना कर दिया है कि न लोगी चावल!

अम्माँ—मेरे बस का रोग नहीं वह। वह चावल मेरा खाया न खाया जायगा।

मैं—क्यों? खासा बारीक तो है!

अम्माँ—वह बात नहीं, पगले! चावल तो यों बहुत अच्छा है, लेकिन भूखे के मुँह का कौर मैं नहीं छीन सकती।

मैं—उसका सवाल यहाँ कहाँ?

अम्माँ—उसी का तो सवाल है। उनके यहाँ जमीन फोड़कर थोड़े ही न आ गया है चावल। राशन की दूकान पर का चावल है। अपनी अफसरी का इस्तेमाल कर रहे हैं। कौन खाये वह चावल। भूखे के मुँह का कौर नहीं तो वह और है क्या? बीस रुपये से कम आमदनीवालों के लिए आता है वह। उनका अन्न उठाकर मैं अपने पेट में धर लूँ, यह मेरे किये नहीं हो सकता।

मैं—यह तो सचमुच बहुत गन्दी बात है।

अम्माँ—गन्दी बात तो है ही, नहीं तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा था कि मना कर दिया? अरे, हम लोग तो दो सेर और पौने दो सेर भी खरीदकर खा सकते हैं, लेकिन उन बेचारों का क्या होगा? वे तो बेमौत मर जायेंगे। उनके लिए तो वही सहारा है।

मैं—उसे छीनकर खाना तो सचमुच हत्या करना है। कितना गन्दा काम करते हैं ठाकुर साहब। अच्छा किया, मना कर दिया तुमने।

अम्माँ—और करती ही क्या?

बहन ने जो पास ही बैठी किताब पढ़ रही थी, कहा—खुद तो खाते ही हैं। वह तो उसका व्यापार करते हैं।

मैं—यह कसाई का काम कबसे लिया हाथ में उन्होंने?

बहन ने चुटकी ली—एहसान भी लादते हैं और पैसे भी खड़े करते हैं। आदमी होशियार हैं। लेकिन महरी आज कह रही थी कि उनकी शिकायत बड़े अफसर के यहाँ होनेवाली है।

मैंने नफरत से तिलमिलाते हुए कहा—बहन, बड़ा अच्छा हो कि ठाकुर साहब बँध जायँ। जो ऐसा कसाई का काम करे, लोगों को इस तरह भूखों मारे, उसे आदमी कहना गुनाह है। अम्माँ, महरी से उनके यहाँ कहलवा दो, हमें उनका चावल नहीं चाहिए। कह दो साल-भर के लिए इफरात चावल हमने इकट्ठा कर लिया है, अब और न चाहिए। और हाँ, यह भी कहलवा दो कि कल मैं वहाँ खाना खाने भी न आ सकूँगा, एक जरूरी काम आ पड़ा है।

उस वक्त नफ़रत के बादलों ने अपने मेंह से मेरी रग-रग को सर्द कर दिया था। मैंने अपने मन में यही कहा—काश, मेरे पास ऐसा कोई मन्त्र होता कि मैं उन मीठे और इतर की तरह खुशबूदार, थाली की शोभा बढ़ानेवाले चावलों के भीतर से खून के दो-चार लाल दाने भी उभाड़ सकता!

हंस '४२]

घन्टी घनघना उठी ।

उमेश ने जाकर दरवाजा खोला ।

देखा, मिसेज मालवीय खड़ी हैं और उनके साथ एक तरुणी है ।

मेरे बड़े भाग जो आपने दर्शन दिये, मिसेज मालवीय, तशरीफ लाइए ।

मिसेज मालवीय ने कमर के अन्दर दाखिल होकर सोफे पर बैठते हुए कहा—उमेश बाबू, आपने इसको न पहचाना होगा । यह मेरी बहिन पद्मा है । इसी साल इसने लखनऊ से बी० ए० किया है ।

उमेश ने मुस्कराते हुए बहुत आजिजी के साथ कहा—बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर मिस पद्मा ।

और फिर बड़ी बहन की ओर मुखातिब होते हुए पूछा—काशी की तबियत अब कैसी है ?

मिसेज मालवीय ने जवाब दिया—थैंक्स, अच्छी ही कहना चाहिए । अभी डाक्टर प्रेमनाथ के यहाँ से ही तो आ रही हूँ । कहते थे, अब बस कंप्लीट रेस्ट की जरूरत है ।

बड़ी बात जो काशी की तबियत रास्ते पर लगी—उमेश ने बहुत प्रकृत ढङ्ग से कहा ।

आपकी तबियत अब कैसी है ?—मिसेज मालवीय ने पूछा ।

मैं तो हैरान आ गया हूँ अपनी तबियत से । क्या कहूँ कुछ समझ ही में नहीं आता । मुझे तो अब शर्म मालूम होती है अगर कोई मुझ से

मेरी तबियत का हाल पूछता है। यों देखने में कोई रोग नहीं, लेकिन सभी कुछ गड़बड़ है—उमेश ने परीशानी, झुँझलाहट और गहरी उदासी-मिश्रित स्वर में कहा।

यह तो बुरी बात है, उमेश बाबू! इस तरह तो आपकी तन्दुरुस्ती गिरती ही जायगी।

गिरती है तो गिरे; मैं उसे बचाऊँ भी कैसे। डाक्टर को दिखलाता हूँ तो उसकी कुछ समझ ही में नहीं आता। दुनिया में लाखों करोड़ों रोग हैं लेकिन मुझ पर एक भी जैसे चस्पाँ नहीं होता—उमेश ने खिन्न मुस्कराहट के साथ कहा।

मुझे यह सुनकर बहुत तकलीफ हुई। मिसेज नहीं दिखीं?

अन्दर कुछ कर रही होंगी, कहते हुए उमेश ने वहीं से अपनी पत्नी को आवाज दी और अपनी बात का सिलसिला जारी रखा—आप मेरी तबियत के बारे में कुछ न कहिएगा।

थोड़ी देर खामोशी रही। यकायक उठते हुए मिसेज मालवीय ने कहा—अच्छा तो अब चलूँगी उमेश बाबू। डाक्टर प्रेमनाथ के यहाँ से लौट रही थी, सोचा आपसे भी मिलती चलूँ, कई दिन से आपको देखा न था।

उमेश ने अपने न आने की सफाई देते हुए कहा—बड़ी मेहरबानी की सचमुच। मैं अपनी तबियत से मजबूर तो हूँ ही। उस पर से ये मुवक्किल मुझे बहुत थका डालते हैं। कचहरी से लौटता हूँ तो कुर्सी पर बैठने की ताब नहीं रहती। उस पर से यह आजकल का धोखेबाज मौसम।

मिसेज मालवीय ने उमेश की इस बात की दाद सी देते हुए कहा—वेरी ट्रेचेरस। और बरामदे की दो सीढ़ियाँ उतरकर मकान के बिलकुल बाहर हो गयीं। उमेश ने उनसे विदा लेते हुए कहा—काशी से कह दीजिएगा मैं जल्दी ही उसे देखने आऊंगा और तब मैं उसे बिलकुल चंगा देखना चाहता हूँ। फिर पद्मा की ओर देखकर कहा—आप तो अभी रहेंगी कुछ दिन?

पन्ना ने कहा—जी।

उन दोनों देवियों को विदा करके उमेश साहब छूटे हुए तीर की तरह आँगन में आकर गिरे।

वहीं बरामदे में उनकी पत्नी सिर नीचा किये मसाला पीस रही थीं। आठ दस बालों का एक हल्का-सा गुच्छा दाहिनी आँख पर लटका हुआ था।

मैंने तुम्हें आवाज दी थी, तुम आयीं क्यों नहीं?

देख नहीं रहे हो?

काशी की बीवी और साली आयी थीं; तुमसे मिलना चाहती थीं लेकिन तुममें इतनी तहजीब कहाँ कि तुम्हारे घर कोई आये तो तुम उसके साथ दो चार मिनट बैठ भी लो।

देखो, मुझे खिझाओ मत। साढ़े नौ बज गया है। अभी आधे घण्टे में खाने के लिए कौवारोर मचने लगेगा। अभी तुमसे बहस करने का वक्त मेरे पास नहीं है। लेकिन इतना जरूर कहूँगी कि दोनों काम मुझसे नहीं हो सकते। या तो तुम मुझे घर का काम करने दिया करो या अगर खाना नहीं खाना है तो फिर जैसा राजा साहब का हुक्म, सुबह से लेकर शाम तक आपके दोस्तों की अगवानी ही में खड़ी रहा करूँ!—सरला ने खिझे हुए लेकिन संयत स्वर में कहा।

उमेश ने जब इस मामले को जरा टेढ़ा रंग पकड़ते देखा तो फिर उन्हें चिन्ता हुई कि उसे रफा-दफा किया जाय। लेकिन उनका गुबार अभी उतरा न था। अपनी बात को थोड़ा मजाक का पुट देते और मुस्कराने की कोशिश करते हुए मुझे संबोधित करके व्यंग के स्वर में बोले—छोटे, तुमने वह कहावत सुनी है न, बीस साल कुत्ते की दुम—

मैंने उन्हें कहावत नहीं पूरी करने दी—दादा, तुम भाभी को बहुत तंग करते हो।

दादा ने मजाक का चोगा उतारते हुए कहा—तङ्ग नहीं जी, बिलकुल सही बात है। अठारह साल से साथ हैं लेकिन सलीका न आया। अब

कोई इनसे पूछे कि भाई बहुत काम में लगी थीं तो यों ही आकर मिल लेतीं।

भाभी मसाला पीस कर उसे सिल पर से उठा ही रही थीं। दादा की बात सुनी तो जैसे आग लग गयी। उनके दोहरे शरीर में भी न जाने कहाँ से इतनी फुर्ती आ गयी। कटोरी जमीन पर रखकर लपक कर दादा के सामने जा खड़ी हुईं और बोलीं: यों ही ? यों ही उन मेम साहबों के सामने पहुँच जाऊँ तब तो आपके नाक-भौं का और भी ठिकाना न रहे!

इस में शक नहीं कि भाभी की धोती पर हल्दी के दाग थे। यों भी उसमें बेशुमार सलवटें पड़ी हुई थीं। सवेरे से ही नहाने से तबियत खराब हो जाती है। और बार-बार कपड़ा बदलना अच्छा भी तो नहीं लगता। सवेरे से ही चौके-चूल्हे की फिक्र करनी पड़ती है, दस बजे तक खाना तैयार करके देना होता है—कचहरी, दफ्तर, स्कूल वाले लोगों का घर ठहरा। लेकिन दादा ऐसा शूरवीर धोती पर पड़ी सलवटों और हल्दी के दाग से हार मान ले तब तो हो चुका। बोले—अरे कपड़ा बदलते ही कितनी देर लगती है?

अब यही काम रह गया है न कि दिन में चौबिस बार कपड़ा बदलूँ!—भाभी ने रोष के स्वर में, नजर फेरे हुए जवाब दिया। दादा तब तक अपना पाइप निकाल कर मुँह में लगा चुके थे। पाइप सुलगाते हुए, मुँह में पाइप दबाये-दबाये बोले—तो ऐसे ही कौन कोल्हू ढकेला करती हो दिन भर, जो धोती पहनने में दो मिनट लग जायगा तो गाड़ी छूट जायगी।

भाभी ने अपनी तिलमिलाहट को बस में करते हुए जवाब दिया—गाड़ी तो न छूटेगी, पर मुँह में एक कौर अन्न न जायगा! रात भर नींद नहीं आयी, सबेरे से दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है लेकिन तो भी डोल फिर रही हूँ क्योंकि जानती हूँ कोई करने वाला नहीं है। लेकिन यहाँ तो लोगों के मुँह से हमदर्दी की बात एक न निकलेगी, कुढ़ाने के

लिए बातें चाहे एक नहीं हजार सुन लो। वही मसल है अन्धे के आगे रोये अपने दीदा खोये।

उमेश साहब तब तक आँगन से अपने कमरे में जा चुके थे।

भाभी और उमेश के जोड़े को बेमेल ही कहना चाहिए। उमेश नयी रोशनी के आदमी हैं। वकील हैं, अच्छे वकील हैं।

लोअर कोर्ट के नौजवान वकीलों में सबसे ज्यादा इन्हीं की चलती है। महीने में हजार बारह सौ पीट लेते हैं। बहुत तेज आदमी हैं। फौरन मामले की तह में पहुँच जाते हैं। मुकदमे की नस पकड़ने में उस्ताद हैं, और उससे ज्यादा उस्ताद हैं मुवक्किल की नस पकड़ने में। शौकीन आदमी हैं। अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं और काफी रोब-दाब से रहते हैं। रुपया बचाने में विश्वास नहीं करते। जो कमाते हैं, महीने-भर में फूँकताप बराबर करते हैं। ऐसे ही लोगों को उम्रदराज लोग उड़ाऊबीर कहा करते हैं। महीने में हर इतवार को अपने दोस्तों की दावत जरूर करेंगे, अगर कहीं शिकार या पिकनिक वगैरह के सिलसिले में शहर के बाहर न चले गये। दावत अगर होगी तो बगैर सामन और लालपरी के तो कोई दावत पूरी नहीं हो सकती। इधर उन्होंने खुद अपने डाक्टर दोस्त के मना करने पर पीना बंद कर दिया है, लेकिन दोस्तों की खातिर-तवाजे में कसर नहीं आनी चाहिए; इसलिए अच्छी अंग्रेजी शराब की दो चार बोतलें हमेशा घर में रहेंगी।

खाने से ज्यादा उन्हें कपड़ों और जूतों का शौक है। खाने में तो शौक पूरा करने के रास्ते में पेट बाधक होता है। कोई भी गड़बड़ चीज खा ली तो पेट कई कई दिन के लिए फिरंट हो जाता है। फिर पैरागोल और लिक्विड पैराफिन की शरण लेनी पड़ती है।

कपड़ों और जूतों का शौक पूरा करने के रास्ते में ऐसी कोई रुकावट नहीं है। समाज में इज्जत भी अच्छे खाने से ज्यादा अच्छे कपड़े और अच्छे जूतों ही से बढ़ती है। यही वजह है कि उनके पास दो दर्जन से

ऊपर जूते हैं, नये से नये फैशन के, अंग्रेजों और चीनियों की दूकानों के बने हुए। कपड़ों का उनका शौक तो वाकई रोग की हद को पहुँचा हुआ है। उन्हें मालूम भर हो जाय कि शहर की किसी दूकान पर सूट का या कमीज का कोई अच्छा कपड़ा आया है, तो फिर उन्हें चैन नहीं नसीब होता जब तक वह कपड़ा उनके घर न आ जावे और वह उसे अपने लंबे-चौड़े पलंग पर बिछाकर उलट-पुलट कर बिजली के तेज प्रकाश में देख न लें। गरज यह कि उमेश साहब कपड़े लत्ते से पूरे साहब हैं, हमेशा बिलकुल टिपटॉप रहते हैं। अगर घर पर सुबह से वह सूट-बूट पहनकर नहीं बैठते तो इसकी वजह सिर्फ यह है कि उनका बँगला सिविल लाइन्स में न होकर एक हिन्दुस्तानी मोहल्ले में है।

रहन-सहन पर नयी रोशनी का जितना असर है, उतना विचारों पर नहीं है। असल में जीवन और समाज पर उनके विचार नयी और पुरानी बातों की एक अजब खिचड़ी हैं। हिन्दू-धर्म के कई पुराने अंधविश्वासों को वे नये विचार का जामा पहनाकर मजबूती से पकड़े बैठे हैं। लेकिन एक बात में उनके खयालात बिलकुल इक्कीसवीं सदी के हैं। उनकी यह खास इच्छा रहती है कि उनकी बीबी दोस्त-अहबाब से मिलने-जुलने में बिलकुल अँग्रेजी तालीमयाफ्ता स्त्रियों की तरह, खुल कर, उन्हीं अदाजों के साथ, नये से नये अंग्रेजी तौर-तरीकों के अनुसार मिले-जुले, अंग्रेजी में गिटपिट-गिटपिट बातें करें। अच्छी चाय बनाना जाने और उसे कायदे के साथ प्यालों में ढालना और भी अच्छी तरह जाने; चाय ढाल चुकने पर, मुस्कराकर 'शुगर अकॉर्डिंग टु टेस्ट' कहना भी जाने; मेज पर बैठ कर खाना जाने, यानी यह कि सभी 'टेबुल मैनर्स' जानती हो और जब मेजबान की हैसियत से खानेवालों की प्लेटों में सालन परसती हो तो पूरी मेज पर शोरबे की लकीर न बना दे, अपने और खानेवालों के कपड़े न खराब कर बैठे या इसी किस्म का दूसरा कोई फूहड़पन न कर बैठे। ये बातें मामूली या हँसकर टाल देने की नहीं हैं। इन्हीं से जिन्दगी बनती या बिगड़ती है।

लेकिन सरला बेचारी सीधी-सादी हिन्दू स्त्री है। पढ़ाई के नाम रामायण बाँच लेना और 'सोस्ति श्री सर्वउपमा जोग मौसीजी को परनाम पहुँचे, यहाँ पर सब कुशल से हैं और आपकी कुशल में सदा ईश्वर से नेक चाहती हूँ........' लिख लेना ही बहुत है। पति-सेवा को ही जीवन का मूल मन्त्र मानती है। बड़े शान्त, स्नेही स्वभाव की स्त्री है। सच्ची है इसलिए किसी की लल्लो-चप्पो में नहीं रहती। जो उससे व्यर्थ को उलझता है, उसे खरी-खरी सुनाती है। बात को घुमाफिराकर कहने की आधुनिक कला से बिलकुल अनभिज्ञ है। गाँव की स्त्री है। गाँव की स्त्री की सभी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ उसके अन्दर हैं। पति के इशारों पर फिरकनी की तरह नाचना चाहती है, लेकिन अपनी शिक्षा और संस्कारों के कारण अकसर बड़ी कठिनाई अनुभव करती है। पति के इच्छानुसार अपने को बना लेना चाहती है, लेकिन बीसियों वर्ष पुराने संस्कार आड़े आते हैं। और ऐसी हालत में जब उमेश बाबू कोई ताना कस बैठते हैं तो वह रुँआसी हो जाती है।

देखा तुमने लाला, कितनी जबर्दस्ती करते हैं तुम्हारे दादा—दादा के कचहरी चले जाने पर खाना खाते हुए भाभी ने मुझसे कहा। मैं खामोश रहा।

ऐसे भी मरन वैसे भी मरन। वक्त पर खाना न तैयार करके दो तो कहेंगे, इतना भी नहीं होता। संग बैठकर मेम-जैसी औरतों का मुँह न निहारो तो कहते हैं, फूहड़ है, तहजीब जानती ही नहीं। तुम्हीं बताओ, यह हल्दी लगी धोती पहने, बाल बिखेरे, भुतनी की तरह मैं उनके सामने जाकर खड़ी हो जाती तो अच्छा लगता? कहते हैं, कपड़ा बदलते कितनी देर लगती है। एक दम कपड़ा बदलो और दो मिनट में जब वह चली जायँ तो धुली धोती उतारकर फिर इसी को पहनो। मुझसे तो नहीं हो सकता यह सब, फिर किसी को बुरा लगे या भला।—भाभी अपने आप ही बोलती चली गयीं। जी उनका बुरी तरह भरा हुआ था और सवेरे की बातों पर उनका गुस्सा पके फोड़े के मवाद की तरह दुख रहा था।

मैंने कहा—आज तो तुम्हें बर्तन भी माँजने पड़े।

माँजू न तो करूँ क्या। पड़ोसी आकर थोड़े ही न माँज जायेंगे। पड़ोसी तो बस हँसने-बोलने के लिए आते हैं। किसी काम के थोड़े ही न होते हैं। रानी साहब को मालूम था कि मेरी महरी आज नहीं आयी है; उनसे इतना न बन पड़ा कि अपनी महरी को हमारे यहाँ का काम करने के लिए भी सहेज देतीं।

मैं खामोशी से सुनता रहा। मेरे बोलने की कहीं गुंजाइश ही न थी।

इन महरियों को क्या कहूँ? ऐसी मोटमर्दी तो कभी देखी नहीं। किसी बात की परवा ही नहीं। एक साथ दस घर का काम थामे रहती हैं। सोचती हैं, यह बहूजी अलग करेंगी तो और बाइस जनें मुँह बाये खड़ी हैं। इसी मारे तो सारी मुसीबत है। नौकर ने आपको गरजू जाना नहीं कि सिर चढ़ा।

मैंने बात पलटने की गरज से कहा—तुम्हारा चेहरा कैसा सूखता जा रहा है भाभी? कैसा एकदम कुम्हलाया हुआ रहता है जैसे स्याह पड़ता जा रहा हो?

भाभी ने एक फीकी मुस्कराहट के साथ कहा—यह तो लगा ही रहता है लाला। इस जनम में अब जी ठीक न होगा। अब मरकर ही मुकती मिलेगी—कहते हुए भाभी वहाँ से उठ गयीं।

तभी पास के एक गाँव से मौसी आयीं। मौसी यानी उमेश की माँ। उमेश का पैतृक घर शहर से बीस मील दूर एक गाँव में है। पक्की डामर सड़क है। मोटर जाती है, इक्के-ताँगे जाते हैं। यानी जाने-आने की काफी सुविधाएँ हैं जिन्होंने दूरी को बहुत कम कर दिया है। इसीलिए मौसी अकसर किसी नहान या पर्व के सिलसिले में या कभी-कभी यों ही सबको देखने-सुनने आ जाया करती हैं। मौसी के साथ उमेश के सबसे छोटे भाई सतीश की पाँच साल की लड़की चम्पा भी थी। चम्पा बड़ी सुन्दर, चपल, खिलवाड़ी लड़की है। कपड़े-वपड़े पहन कर वह बिलकुल सजी-

सजायी गुड़िया दिखायी पड़ती है, लेकिन गुड़िया की स्थिरता उसमें ढूँढ़े न मिलेगी। घर में चुहिया का पीछा करेगी, डण्डा लेकर पूसी का पीछा करेगी, बाहर गिलहरी को पकड़ने के लिए भागेगी, कुत्ते की दुम उमठेगी। कुछ नहीं होगा तो आप ही से लिपटकर खेल करेगी। बहरहाल, वह चुप नहीं बैठ सकती। चुप बैठना उसके स्वभाव ही में नहीं है। गोरी है, हृष्ट-पुष्ट है, हँसती रहती है, भोली-भोली-सी शकल है, सहज ही वह सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। मौसी से हिली हुई भी वह बहुत है। मौसी भी उसे बहुत अधिक चाहती हैं, इसलिए हरदम उसे साथ रखती हैं।

लेकिन चम्पा की वही शरारत जो गाँव में एक गुण है, शहर में आकर अवगुण हो जाती है। गाँव में घूमने-फिरने, दौड़ने-भागने के लिए कोई रोक-टोक नहीं होती, ढेले चलाने की कोई मुमानियत नहीं होती। लेकिन शहर में वह आजादी कहाँ, दौड़ने-भागने के लिए वह मैदान कहाँ?

चम्पा ने आकर देखा और अपनी पुरानी स्मृति को फिर ताजा किया कि शहर में शीशे की खिड़कियाँ और दरवाजे होते हैं। दरवाजे के शीशों में मुँह देखने में बड़ा मजा आता है, चेहरा धुँधला-धुँधला दिखता है तो क्या हुआ। चम्पा ने दरवाजे को हटा-बढ़ाकर भिन्न भिन्न भावभंगियों से उसमें अपना चेहरा देखा। फिर दरवाजे को आगे-पीछे करना ही एक खेल बन गया। दरवाजे पर एक पैर से खड़े होकर और दूसरे से धक्का देकर उसने रेल-रेल खेलना शुरू कर दिया। लेकिन कोई अघट घटना नहीं घटी, यानी दरवाजा किसी बार इतनी जोर से दीवाल से जाकर नहीं टकराया कि शीशे एक तीखी झनाक के साथ फर्श पर बिखर जाते।

भाभी चम्पा को यह खेल करते देख रही थीं। उनका जी धुकुर-पुकुर कर रहा था, क्योंकि अगर कोई दुर्घटना हो जाती तो चार बात उन्हीं को तो सुननी पड़ती। बेड़ा जब खैरियत से पार हो गया तो उन्होंने अपने जी में कहा—बड़े भाग। चम्पा तो जैसे नये-नये भूखण्ड खोजकर निकाल रही थी। ड्राइंगरूम उसे बड़ा आकर्षक लगा। स्प्रिंगदार कुर्सियाँ जिन

पर उछलने में झूले का-सा आनन्द मिलता है। फिर वह लम्बा-चौड़ा तख्त जिस पर दूधिया चादर बिछी हुई थी और दो बड़े-बड़े खूबसूरत मसनद रखे हुए थे उस पर लोट-पोट करने में, इधर से उधर कलैया खाने में जो मजा है उसका तो कहना ही क्या......

वकील साहब के कचहरी से लौटने का वक्त हो गया था। आजकल जब वह लौटते हैं तो बहुत थके हुए होते हैं और मिजाज ठीक नहीं रहता। जरा-जरा-सी बात पर झल्ला उठते हैं। बीमारी में आदमी का स्वभाव यों भी चिड़चिड़ा हो ही जाया करता है। और इस बात को तो वे बर्दाश्त ही नहीं कर सकते कि कोई उनके ड्राइंगरूम की चीजों को तँहड़-बँहड़ करे। वकील का घर ठहरा, मिलने-जुलनेवाले आते ही रहते हैं। इस खयाल से ड्राइंगरूम का खास महत्त्व है। अच्छे ड्राइंगरूम का लोगों पर अच्छा असर पड़ता है। इसीलिए इस कमरे को उमेश साहब एक खास ढंग से सजाकर रखते हैं और अगर किसी ने उनके सोफे को जरा इधर का उधर कर दिया या उनके दोनों बाजुओं पर जरा मट्टी या नाखून की खरोंच लगा दी या धमाचौकड़ी मचाकर उसकी स्प्रिंग को जरा ढीला कर दिया या तख्त की चादर पर कोई धब्बा या धूल का एक जर्रा भी लगा दिया, तो उनका दिमाग गरम हो जाता है और उन्हें बस यही सूझता है कि लोग उन्हें मारने पर तुले हैं और उन्हें गले में फाँसी लगा-कर............

सयाने लोगों का घर ठहरा, क्यों कोई उनके ड्राइंगरूम से उलझे। इसलिए कोई उस कमरे में जाता नहीं। लेकिन सयाने आदमी और बच्चे में तो फर्क होता है न।

चंपा अपने खेल-कूद में मगन थी। सरला का मन नहीं हुआ कि वह चंपा के खेलने में विघ्न डाले। वह बड़ी देर तक पाँवपोश पर खड़ी-खड़ी चंपा को देखती रही। तन्दुरुस्त, खेलता, हँसता बच्चा किसके हृदय को उल्लास से नहीं भर देता। सरला बड़ी देर तक वहीं खड़ी-खड़ी चम्पा को देखती रही, देखती रही, गौर से, एक टक, गोया आँखों-आँखों

में ही पी जायगी। उसके हृदय का सुख उसकी आँखों में छलक आया। उसकी हिम्मत जाकर चम्पा को छेड़ने की नहीं हुई। पर उसी वक्त उसे अपने कलेजे में कहीं दर्द-सा होता जान पड़ा, जैसे किसी ने एक भोंथी, हलब्बी छुरी उसकी बगल में घोंप दी। मुँह ने कोई शब्द न किया, आँख में एक बूँद पानी आ गया......

चुपके से अपने आँचल से आँसू की वह बड़ी बूँद पोंछते-पोंछते उसने सोचा, वकील साहब अब आते ही होंगे और पैर आगे बढ़ाये।

बहुत चूम-पुचकारकर उसने चम्पा को वहाँ से खिसकाना चाहा, लेकिन चम्पा पर कोई असर नहीं। जरूरत से ज्यादा लाड़ ने उसे जिद्दी भी बना दिया है। इसलिए जब सरला ने जरा जोर देकर उसे वहाँ से हटाना चाहा, तो वह मचल गयी और लगी बुक्का फाड़कर रोने। उसके रोने का अंतरिक्षभेदी निर्घोष मौसी के कानों तक पहुँचा तो वे अपना चश्मा चढ़ाये, चट्टी पहने, खुट्टुर-खुट्टुर करती कमरे में दाखिल हुईं। अब सरला के काटो तो बदन में लोहू नहीं। अब अम्माँ जरूर दस बात सुनायेंगी। क्यों अभी मैं इससे उलझी, जो कुछ कर रही थी, करने देती, कहेंगी न कि कैसी कठकलेजी है, हँसते बच्चे को रुला दिया। इससे बच्चे का खेलना भी नहीं देखा जाता। अपनी कोख सूनी होती है तो ऐसा ही होता है......

मौसी जब कमरे में दाखिल हुईं, उनकी बड़ी बहू सिर नीचा किये खड़ी थी और चंपा अपने फेफड़े का सारा जोर लगाकर चिंघाड़ रही थी।

मौसी मुस्करायीं और बहू को जैसे समझाते हुए धीरे से प्यार के साथ बोलीं—हँसते बच्चे को कभी न छेड़े। बच्चों ही के रूप में तो भगवान् रहते हैं। बच्चे ही तो घर की शोभा हैं। उनकी इस धमाचौकड़ी से ही तो जिन्दगी का सूनापन कटता है, घर में सावन रहता है। बच्चे ही तो इस रामजी की बगिया के फूल हैं। फिर चंपा को डराने के लिए जरा जोर से घुड़कते हुए बोलीं—बहुत सिरचढ़ी हो गयी है यह चम्पा। तुमने इसके कान खींचकर दो कनचप्पड़ क्यों नहीं रसीद किये, सीधी हो जाती। कायदे

से तो बैठा ही नहीं जाता। अबके लड़के भी तो बड़े कलजुगी होने लगे हैं, नहीं हमारे लड़के..........

रात ग्यारह बजे। दंपति का शयनकक्ष। पास-पास दो पलंग।

—अरे सो गयीं ?

कोई जवाब नहीं।

मैंने कहा, सो गयीं क्या ?

सोयी नहीं, सोने जा रही हूँ।

परसों इतवार है।

हाँ।

काशी के चलेंगे।

तुम चले जाना, मैं कहीं नहीं जाऊँगी। मेरी तबियत ठीक नहीं है। इस वक्त भी सिर में दर्द है और पूरे बदन में पीर हो रही है।

वह तो तुम्हारा नित का झगड़ा है। कल प्रेमनाथ से दवा दिलवा दूँगा।

वह क्या दवा देंगे। ......और देखो, मुझसे बहस न करो, मेरी नींद उड़ जायगी, फिर रात-भर कड़ियाँ गिननी पड़ेंगी।

काशी की बीवी बुला गयी है। काशी को देखने हमें जाना भी तो चाहिए।

तो जाओ न। मेरी तबियत ठीक नहीं है।........

पर नींद उसकी आँखों में कहाँ ? शाम की, दिन-भर की घटनाएँ और अम्माँ की बातें भिड़ के छत्ते के समान उसके दिमाग में किलबिल कर रही थीं। आँखें मूँदती तो बड़े-बड़े टीलों के आकार के गुब्बारे या भूरे-भूरे बादल के टुकड़े उसे अपनी ओर बढ़ते और आपस में टकराकर बिखरते दिखायी पड़ते और उसका सिर भन्ना उठता। उसे लगता कि उसकी जिन्दगी बारह या लगभग इतनी ही सीढ़ियों का एक ज़ीना है

जिस पर वह चढ़ती है और उतरती है, उतरती है और चढ़ती है, चढ़ती है और उतरती है और..........पानी देती है जिन्दगी के उस झंखड़ बिरवे को जिसमें न फल लगता है, न फूल!

[निर्माण, '४६]

योरप की विदेशी जनता के नाम

आज शरत्-पूनो है। आकाश में एक बड़ा-सा चाँद अपनी ही रजत-रश्मियों के सहारे जैसे लटका हुआ है। तमाम पृथ्वी चाँदनी में नहा रही है। लगता है, किसी ने दूध उँड़ेल दिया है।

इस शुभ्र ज्योत्स्ना में हम अत्यन्त सुन्दर और पवित्र चीजों ही का स्मरण करते हैं—बच्चे, फूल, ताजमहल। ताजमहल और शरत्-पूनो का तो चोली-दामन का साथ है। हमारे देश के कोने-कोने से सौन्दर्य-प्रेमी यात्री (जो समृद्ध भी हैं !) शरत्-पूनो की दूध से नहलायी हुई, बिल्लौर चाँदनी में अमर प्रेमिका ताज बीबी के रौजे की छवि देखने आगरे पहुँचते हैं। ताजमहल हमारे मुल्क की एक शानदार इमारत है जिस पर हमें घमण्ड है। तुमने भी अपनी गाइडबुकों में उसकी तस्वीरें देखी होंगी। उसे दुनिया का सातवाँ आश्चर्य कहा जाता है। सचमुच वह ऐसी ही चीज है। उसे देखकर हमारी रगों का खून अपनी हरकत तेज कर देता है। हमारा दिल खुशी के मारे बाँसों उछलने लगता है।

लेकिन तभी हम एक उदासी भी महसूस करते हैं—इस बेहद खूबसूरत चीज को बनानेवाले कारीगर हम हिन्दुस्तानी, आज एक ज़ंगदार लोहे के गलीज घिनावने कटघरे में बन्द हैं। जिन्होंने इतनी खूबसूरती को जन्म दिया, उनके जिस्म पर गुलामी की बैंगनी मोहर है—जैसी हमारे मुल्क में बूचड़ों की दूकानों पर टँगे बकरों पर मिलती है !

आज उन्हीं में का एक आदमी इस कठघरे के घने, कम्बख्त अँधेरे को चीरकर आती हुई तुम्हारी आजादी की रोशनी को देख रहा है। तुम्हारी रोशनी ने मेरी दुनिया को रौशन कर दिया है, मेरी बुझती हुई आँखों में एक नयी चमक ला दी है। थकान से मेरे पैर मन-मन-भर के हो रहे थे और आगे बढ़ने का दम उनमें बाकी न रहा था। मेरी बाहें मेरी न रह गयी थीं। मेरा तमाम शरीर जैसे फुसफुसी मिट्टी का हो गया था, जो उठाते ही वहीं ढेर हो जाता है। मेरा साहस तार-तार हो गया था, जैसे झीना कपड़ा। पर आज वह बात नहीं है। मेरे मन की ही बात लेकर हमारा एक नौजवान कवि गाता है—'आज अपरिचित बल आया है युग-युग की मेरी इन थकी हुई बाँहों में।' हाँ, अपरिचित। पर एकदम अपरिचित नहीं। उसका परिचय हमारे वीर शहीदों, स्वतंत्रता-संग्राम के वीर सैनिकों, रक्त-वसना स्वतंत्रता-देवी के अमर आराधकों के नामों की लंबी-लंबी तालिकाएँ देती हैं। जो नया बल आया है, वह बाँहों का नहीं, आजादी की उमंग का है।

वही आजादी जिसके लिए अपना सिर, अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक दे देने की हम शपथ ले चुके हैं। वही आजादी जो तुमने हथगोलों, संगीनों और गोलियों की भाषा में अपनी बात कहकर, हिटलर और मुसोलिनी, हिमलर और हेड्रिक, पेताँ और लवाल, फिलोफ और अन्तोनेस्कू के जल्लादों को मौत के घाट उतारकर हासिल की है।

इसीलिए आज शरत् की इस स्वच्छ राकानिशा में जब हम अत्यंत सुन्दर और पवित्र चीजों का स्मरण करते हैं, जैसे फूल, बच्चे, ताजमहल, मैं तुम्हारा स्मरण कर रहा हूँ। हमारे यहाँ फूल कैद हैं, बच्चे कैद हैं, ताजमहल कैद है। तुम्हारे यहाँ भी कल तक फूल कैद थे, बच्चे कैद थे, ताजमहल कैद थे; फूल रौंदे गये थे, बच्चे उछालकर संगीनों पर लोके गये थे, ताजमहलों पर बमबारी करके उन्हें मलबे का ढेर बना दिया गया था। आज तुम्हारे फूल आजाद हैं, उनके चेहरों पर हँसी के झरने फूट रहे हैं। ऐसे ही दिन शरत्-पूनो होनी चाहिए— चाँद में क्या इतनी अक्ल

भी नहीं ? तुम भी तो शरत्-पूनो को प्यार करते होगे ? पिछले साल और उसके अगले साल और उसके भी अगले साल तुमने शरत्-पूनो को गाली दी होगी, क्योंकि वह तुम्हारे कामों में विघ्न डाल रही थी। तुम छापेमार थे। तुम रेल की पटरियों के आसपास घास पर लेटे हुए थे, पुलों के खंभों के साये में छुपे खड़े थे, जंगलों और झाड़ियों के अँधेरे में, पहाड़ियों की गुफाओं में अपनी जन्मभूमि को पराधीनता के पाप से मुक्त करने की योजनाएँ बना रहे थे। तुम्हारे कंधों पर राइफलें थीं, कमर में छुरे और रिवाल्वर थे, हथगोले थे, एक-दो मशीनगनें भी आसपास तैयार खड़ी थीं। तुम्हारे दिलों में धड़कन थी—इसलिए नहीं कि दुश्मन हमला कर देगा, उसके लिए तो तुमने अपना सिर हथेली पर ले लिया था, तुम्हारा दिल मजबूत था, तुम्हारे वश में था, तुम्हारे हाथ निशाना लेते वक्त काँपते न थे, तुम्हारी राइफल में गोलियाँ भी मौजूद थीं, और कुछ नहीं तो तुम्हारे छुरे में दुश्मन के काले हृदय का भेद ले आने की तेजी तो थी ही। तुम्हारे दिल इसलिए धड़क रहे थे कि माँ की अनमोल लाज तुम्हारे हाथों में थी। प्रखर चाँदनी तुम्हारे छिपने की जगह का पता दुश्मन को दे रही थी, माँ को नंगा कर रही थी। तुमने चाँद को कोसा था।

पर आज तुम अपने घर में हो। कमरे में आग जल रही है। तुम्हारा पाँच साल का लड़का अपने तमंचे से एक निहायत बदसूरत गुड्डे का, जो हिटलर का भेजा हुआ डाकू है, निशाना ले रहा है। तुम्हारी पत्नी स्वेटर बुनते समय यह सोचकर काँप-काँप उठती है कि उस कमरे में 'नयी तहजीब' फैलानेवाले बर्बरों ने देशभक्तों की आँखें निकाली थीं, उनके नाखूनों में कीलें ठोंकी थीं, उनकी उँगलियों पर उस्तरों की धार तेज की थी, उनके शरीर का जीता मांस काटकर लाल तारा बनाया था, गर्भवती माताओं के पेट में संगीन भोंकी थी। उसे विश्वास नहीं होता कि उन जर्मन-हत्यारों के रक्त को छोड़कर दूसरा कोई रसायन कमरे को धो सकेगा।

नये योरप की इमारत खड़ी करनेवाले बहादुर मेमारो,

मैं तुम्हें 'मेमार' नाम से ही पुकारना चाहता हूँ। अलग-अलग तुम्हारे नाम मुझे अटपटे लगते हैं। कुछ समझ में भी नहीं आते, पियेर... मिलोश...तोगलियाती और न जाने क्या-क्या। इन नामों से हजारों मील दूर बैठे हुए एक हिन्दुस्तानी के सामने तुम्हारी तस्वीर भी अलग-अलग नहीं बनती। मैं तो तुम्हें सिर्फ 'मेमार' कहकर पुकारना चाहता हूँ, मेमार यानी घर बनानेवाला। पहले का जमाना होता, पुराना योरप होता, जिसमें हाथ को खुरदुरेपन से बचाने के लिए हरदम सचेष्ट, दस्ताने पहने हुए, टॉप-हैट लगाये हुए बड़े साहबों, बैंकरों का राज था, तो किसी को मेमार कहना बदतमीजी में दाखिल होता, बेहूदगी में शुमार किया जाता। मगर नहीं, अब तो तुम नया ही योरप बनाने जा रहे हो जिसमें काम करना इज्जत की बात होगी, न कि काम से मुँह चुराना। मैंने तुम्हें मेमार कहा है। तुम एक-एक ईंट उठाकर नये योरप की इमारत खड़ी कर रहे हो। वह नीले आसमान से बात करेगी तुम्हारी इमारत। मैं जानता हूँ, तुम्हारे बाजुओं में ताकत है, तुम्हारे दिलों में हौसला है और तुम्हारी आँखों में जोत है, अपनी उठती हुई इमारत का सपना है, लेकिन उसी आँख में कहीं किसी कोने में नफरत की एक चिनगारी भी चमक रही है। तुम्हारे खून में गर्मी है, तेजी है; मगर एक तल्खी भी है। और मैं जानता हूँ यह क्यों है। क्योंकि तुम जो इमारत खड़ी कर रहे हो, वह कोई मामूली इमारत नहीं है, वह तुम्हारी जीत का ताजमहल है। और ऐसी इमारत बनाने के लिए हौसले और उमंग की जरूरत भी होती है और नफरत की भी।

तुम्हारा ताजमहल संगमर्मर का नहीं, ईंट और गारे का है। अपनी जीने की चाह की आग में तुमने अपनी इमारत की ईंटें पकायी हैं; वह चाह जो किसी आततायी के सामने सिर नहीं खम करती, जो सिर खम करने से पहले उसे धड़ से अलग कर देती है। इस आग में भी गर्मी कम नहीं, मगर वह एक दूसरी ही आग है जिसने तुम्हारी ईंटों को लोहे की ईंटें बना दिया है—वह है तुम्हारी नफरत की आग। जब अपनी ही

आँख के आगे अपने तुतलाते हुए बच्चे का खून जमीन को भिगो चलता है, अपनी माँ और बहन और प्रेयसी की लाज जमीन में लथेड़ी जाती है, जब सन की तरह सफेद बालोंवाले पिता के जीवित शरीर पर संगीन की प्रैक्टिस की जाने लगती है तो नफरत सिर्फ मन का एक भाव नहीं रह जाती, वह एक ठोस चीज हो जाती है—जैसे छुरा।

हम हिन्दुस्तानी भी इस नफरत को खूब अच्छी तरह समझते हैं। दो सौ साल से हम भी कमोबेश वही सबक सीख रहे हैं और हमारे बलिदानों की कहानियाँ बतला रही हैं कि हमने अपना सबक बहुत बुरा नहीं याद किया है।

पर तो भी शायद एक गुलाम हिन्दुस्तानी के पास से आनेवाले इस खत से तुम्हें खुशी न होगी। अपनी जीत के मौके पर आदमी हारे हुओं की दुआ लेने से भी झिझकता है। पर तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हम इतने तुच्छ नहीं। हमने भी कम कुर्बानियाँ नहीं की हैं, आगे भी हम किसी से कम कुर्बानियाँ न करेंगे। हिन्दुस्तान की सरजमीन हमारे खून से कई बार तर हो चुकी है, हमारे खून के छींटे उड़े हैं तो उन्होंने गौरीशंकर को छू लिया है, हमारे फूटे हुए सिरों और टूटी हुई बाँहों की नुमाइश—

मगर जाने दो उस बात को, फूटे हुए सिरों की नुमाइश लगानाबुज-दिली है। गुलामी किसे भाती है! मालिक का पट्टा किसे अपने गले में अच्छा लगता है! कुत्ते की जिन्दगी किसे पसंद है! जो दुश्मन की संगीन पर अपनी लाठी या नंगी छाती से वार करता है, वह किसी पर एहसान नहीं करता, वह अपनी इंसानियत का पहला इम्तहान देता है।

तुम हमारी बधाई कबूल करो, क्योंकि हमने भी नदियों के पानी को अपने खून से लाल कर दिया है।

मैं पराधीन भारतवासी तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ पियेर, तुम जो रूसो और वाल्तेयर और ह्यूगो और रोलाँ की संतान हो; तुम जो इति-हास की सबसे बड़ी क्रांतियाँ करते आये हो; तुम जिसके रक्त में बास्टील

पर चढ़ाई करनेवालों और १८७० के हारनेवाले चिर-विजयी कमूनार्डों का वीरदर्प लहरें मार रहा है ; तुम जो आज तोरे और कोनिग के झंडे के नीचे मरना और मारना सीख रहे हो, नफरत करना सीख रहे हो, मौत से, दुश्मन से।

मैं तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ मिलोश, तुम जो मार्शल टिटो के इस्पाती संकल्प की ही सजीव मूर्ति हो ; तुम जो अपने लोकगीतों के नायक मार्को क्राल्येविच की तरह सदैव राक्षसों और आततायियों से जूझते आये हो ; तुम जो अपने यूगोस्लाविया के एक-एक जंगल, एक-एक पहाड़ और पहाड़ी, एक-एक नदी और नाले को दुश्मन की लोथ से पाट देने का व्रत ले चुके हो ;

मैं तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ तोगलियाती, तुम जो गैरीबाल्डी की संतान हो ; तुम जिसे उस क्रूर विदूषक मुसोलिनी का तेईस साल का भूख और गोलियों का राज भी नहीं झुका सका, नहीं तोड़ सका ; तुम जो आज एक बार फिर रसातल के गर्भ से उठ खड़े हुए हो, अपना प्रशस्त भाल गर्व से ताने हुए, अपनी मुट्ठियों को बाँधे हुए, वे मुट्ठियाँ जिनमें शेर का जबड़ा तोड़ देने की ताकत है।

मैं तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ अलबर्टोस, तुम जो हरकुलीज की संतान हो, स्वाधीनता के चारण अंध महाकवि होमर की संतान हो, वीर-प्रसू यूनान की संतान हो ;

मैं तुम सबका अभिनंदन करता हूँ, पोलैण्ड और रुमेनिया और बलगेरिया के वीरो। तुम सबने प्राणों की आहुति देकर, अग्नि की दीक्षा लेकर, रक्त से अपना अभिषेक किया है और केवल फ्रांसीसी या इतालवी या यूगोस्लावियन या पोलिश या यूनानी नहीं रह गये हो, तुम सब हो गये हो योरप के छापेमार, नये योरप की इमारत के बहादुर मेमार, नये योरप के पिता, नये योरप के प्रहरी—तुम्हारा नाम-गाम, परिचय सब एक है। तुम योरप हो !

तुम पूछ सकते हो कि इतनी दूर बैठा हुआ मैं क्यों तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ ?

क्योंकि आज जब तुम अपनी सदियों की गुलामी का दुर्ग ढहा रहे हो, हमारे जेल की दीवारें भी हिल गयी हैं।

क्योंकि तुम उठ खड़े हुए और हममें जान आयी। तुमने खून बहाने में कंजूसी न की और हमारा खून बेताब हो चला। तुमने आजादी की देवी को अपना सिर चढ़ाया और वही मतवालापन हम पर सवार हुआ। तुमने गुलामी की जिल्लत को कफन की तरह हाथों में भरा और चिथड़े-चिथड़े कर दिया और हमारी मुट्ठियाँ कस गयीं, नाखून हथेलियों में गड़ गये।

और यही सबूत है इस बात का कि दुनिया को गुलाम बनानेवाला एक है और उसके खिलाफ तमाम मजलूमों की लड़ाई भी एक है। यों देखने पर तुम हिटलर से लड़े, मुसोलिनी से लड़े, पेताँ से लड़े, लवाल से लड़े, बदोलियो से लड़े, मिहाइलोविच से लड़े, और हम अंग्रेजी सल्तनत से लड़ रहे हैं। मगर गौर से देखो तो तुम जिससे लड़ रहे हो, हम भी उसी से लड़ रहे हैं और हम जिससे लड़ रहे हैं तुम भी उसी से लड़ रहे हो। अगर ऐसा न होता तो तुम्हारी लड़ाई से हमें क्यों ताकत मिलती और हमारी लड़ाई से तुम्हारे हाथ कैसे मजबूत होते? बात असल यह है कि लुटेरों के एक गिरोह ने हमको, तुमको, सबको कैद कर लिया है और अपने पहरेदार कुत्ते बिठाल दिये हैं। नामों के धोखे में मत आओ। आखिर तुम्हारे यहाँ भी तो कुत्तों की बहुत-सी किस्में होती हैं—स्पेनियल, ग्रेहाउंड, फॉक्स टेरियर, बुलडॉग...

यह तुम ठीक कहते हो कि लुटेरों के गिरोह ने तुम्हारे यहाँ गुलामी की नयी किलेबंदियाँ बनानी शुरू कर दी हैं। मगर मैं तो तुम्हें इन किलेबंदियों और पुराने दुर्ग पर एक साथ हमला करते देख रहा हूँ। आदमी अपनी भूलों से ही सीखता है। सैकड़ों भूलों के बाद अब तुम होशियार हो गये हो, भेड़ियों को अब तुम अच्छी तरह पहचानते हो, उनका खाल

बदलकर और भेड़ की खाल ओढ़कर आना भी तुम्हें धोखे में नहीं डाल सकता। तुम्हारी राइफल में इतनी काफी गोलियाँ है कि तुम सभी भेड़ियों को एक-एक गोली उपहार में दे सकते हो।

पियेर,

क्या मैं जानता नहीं कि दुनिया-भर के भेड़ियों के झुण्ड ने हत्यारे दारलाँ के लिए कितना शोरगुल न मचाया, जब तक कि तुम्हारे किसी साथी ने इस तमाम बेमानी शोर-शराबे को बिलकुल खत्म न कर दिया! फिर कैसा बवंडर न उठा जेनरल जिरो को लेकर, वही जेनरल जिरो जो कल तक अपने ही देशवासियों के गले में फाँसी का फंदा बाँधता था! फिर वह बवंडर भी थम गया। और तभी किया देशभक्तों ने कुछ जल्लादों का मुकदमा। प्यूश्यू को फाँसी देनी थी, उसने हिटलर के विरोधी रणबाँकुरों की फेहरिस्तें जर्मनों और लवाल को दी थीं। हत्यारा, देशद्रोही प्यूश्यू। उसे मौत की सजा सुनायी गयी। सजा का सुनाना था कि दिशाएँ मानों कराह उठीं। विश्व के कोने-कोने से 'मनुष्यता' के नाम पर प्रार्थनापत्र भेजे गये कि उस जल्लाद की जान बख्श दी जाय। करुणा का महासागर उमड़ पड़ा था उस दिन! इतने लोगों को एक जल्लाद के प्राणों की भीख माँगते हुए देखकर भी जो यह कहे कि दुनिया मे मनुष्यता अब नहीं, उस मनुष्यद्रोही को खौलते तेल के कड़ाह में डाल देना चाहिए! मनुष्य की सद्वृत्तियों में अनास्था उपजानेवाला जीने दिया जाता है, यह स्वयं इस बात का काफी प्रमाण होना चाहिए कि मानवजाति का नाम उजागर करनेवाले लंबरदारों में करुणा-पयस्विनी अभी भी बह रही है! ठीक तो कहते हो, नहीं भला एक सर्प से भी भयानक हत्यारे के लिए इंगलैंड और अमरीका के जाने-माने श्रेष्ठिगण इतना आन्दोलन करते!

पर पियेर, तुम्हारा निश्चय तो जैसे पत्थर की लकीर था। तुमने प्यूश्यू को मौत की सजा सुनायी तो फिर कोई ताकत उसे मेट न सकी। तुमने देशद्रोह के लिए उसकी पीठ में गोली मार दी। कुत्ते की जिन्दगी

अपनानेवाले को कुत्ते ही की मौत मिली। सब जानते हैं कि तुमने क्रोध या कोरी प्रतिहिंसा के वशीभूत होकर उसे मोत के घाट नहीं उतारा। तुमने शांत, दृढ़ मन से न्याय किया है। तुमने कठोर न्याय किया है, क्योंकि तुम अपने दुधमुँहे बच्चे का शरीर कीचड़ और खून में लिथड़ा हुआ नहीं देखना चाहते थे। तुमने कठोर न्याय किया है, क्योंकि तुम अपनी प्रेयसी को बाजार में नंगी हालत में कोड़े लगाते न देखना चाहते थे, केवल इस अपराध के लिए कि वह अपना नारीत्व तुम्हें छोड़ और किसी को समर्पण करने को तैयार न थी। तुमने कठोर न्याय किया है, क्योंकि तुम्हें अपने वृद्ध माता-पिता से, उनके माथे की झुर्रियों, उनके सन-से, चाँदी के तारों-से सफेद बालों से, उनकी सजल-करुण आँखों से प्रेम है। तुमने कठोर न्याय किया है, क्योंकि तुम्हारी जन्मभूमि अपने असंख्य क्षतों से पुकारकर प्रतिशोध की माँग कर रही थी। तुमने कठोर न्याय किया है, क्योंकि तुम्हारा भाई (जो पेरिस या मार्सेइ या लियों या वर्दुं, फ्रांस के किसी कोने में हो सकता था) जब पैशाचिक गेस्टापो के यंत्रणागृह से निकलकर आया तो उसकी आँखों की जगह दो गोली के बराबर छेद थे और नाक-कान का पता उनसे बहता हुआ खून दे रहा था। वह बोल भी न सका था ; क्योंकि उसकी जीभ काट डाली गयी थी। पर उसके घावों ने अपनी मूक वाणी में—और कोई वाणी उसके पास थी भी तो नहीं !—प्रतिशोध का संदेश दे दिया था। इसी लिए तुमने कठोर न्याय किया था। कल कुसुम-सदृश कोमल जीवन पुष्पित हो सके, इसके लिए तुम्हें आज पाषाण बनना है। इतिहास के इस सबक को इस बार तुम नहीं भूले और इसी लिए तुम्हारा भविष्य सुरक्षित है।

मगर पेरिस और सेदाँ, मार्सेइ और लियों, वर्दुं और रेन में तुमने इसलिए नहीं रक्तदान दिया है कि तुम हिटलरी गुलामी की जगह अंग्रेजी या अमरीकी गुलामी का पट्टा गले में पहन लो। तुम मौत से हँस-हँस गले मिले हो स्वतंत्र फ्रांस के लिए। तुम्हारे गेब्रियेल पेरी और पियेर सेमार और शातोब्रियाँ के सत्ताइस अदम्य कम्युनिस्ट वीरों ने जिन्दगी

को फटे कपड़े की तरह उतारकर फेंक दिया है, स्वतंत्र फ्रांस के लिए। महान् क्रान्ति और पेरिस कम्यून के तुम्हारे पुरखों ने फ्रांस की सड़क को अपने लाल रक्त से रँगा था स्वतंत्र फ्रांस के लिए, जिसमें फ्रांस की जनता अपना भविष्य अपने हाथ में लेगी। तुम आज वही कर रहे हो। तुम्हारे ऊपर युगों के दायित्व का भार है। तुम्हें कठोर होना ही पड़ेगा, नहीं साम्राज्यलोभी लुटेरों का षड्यंत्र सफल हो जायगा और फ्रांस की स्वाधीनता देवी नयी शृंखलाओं में जकड़ दी जायेगी। शृंखलाएँ शृंखलाएँ हैं, चाहे वे चैनेल के इस पार के कारखाने में ढाली जायँ चाहे उस पार के।

और मिलोश, तुम?

तुम्हारी कुर्बानियों और जाँबाजी की मिसाल नहीं। अपने बहादुर नेता टिटो की रहनुमाई में तुमने अपने दुश्मनों के दाँत खट्टे कर दिये, स्प्लिट और जैग्रेब और बेलग्रेड के किलों को तुमने सैलाब की तरह बढ़कर अपनी गोद में भर लिया। तुमने लाखों जर्मनों को अपनी पहाड़ियों और जंगलों में हमेशा के लिए सुला दिया, एक आराम की नींद, मौत की नींद जिसमें छापेमारों के हाथ मारे जाने का डर तो नहीं है कम से कम!

मगर उधर तो तुम अपनी बहादुरी से हिटलरी दस्तों का मद तोड़ रहे थे और इधर अमरीका और इंगलैण्ड में कुछ और ही साजिशें हो रही थीं। यहाँ के मेधावी राजनीतिज्ञों ने अपनी राजनीतिक दूरबीन से एक नया सितारा खोज निकाला—मिहाइलोविच। उनकी दूरबीन ने उन्हें बताया कि यूगोस्लाव जनता का असली नेता मिहाइलोविच है, टिटो तो महज एक डाकू है। और अखबारों में मिहाइलोविच की तसवीरें छपने लगीं, उसी के नाम की धूम मच गयी।

और बिलकुल यही चीज इटली, पोलैंड, यूनान, सब जगह हो रही है। हिटलर का किला ढह रहा है, हिटलरी बेड़ियाँ टूट रही हैं, आजाद योरप पैदा हो रहा है। यह बात बहुत-से अंग्रेज और अमरीकी लुटेरों को नागवार है। वे चाहते हैं कि हिटलर का जनाजा निकल जाय। मगर वे यह नहीं चाहते कि तुम आजाद हो, योरप आजाद हो, तुम अपने ऊपर

राज करो, हुकूमत पियेर और मिलोश और तोगलियाती और चिनेस्कू (जो मन चाहे, नाम रख लीजिए), योरप के किसानों-मजदूरों, छोटे-मोटे कारीगरों, वकीलों, डाक्टरों और छोटे-मोटे व्यापारियों के हाथ में हो। हिटलर की राख पर वे अपना महल खड़ा करना चाहते हैं। उसके लिए उन्हें कारिन्दों-गोयन्दों की जरूरत है। दार्लां, जिरो, बदोलियो, मिहाइलोविच उन्हीं के नाम हैं।......

पर तुम इस षड्यंत्र के व्यूह को भेदना जानते हो और भेदकर निकल आना जानते हो। उसका मंत्र है : एकता। संग-संग खून बहाकर तुमने अपना एका कायम किया है। तुम्हारे एके को अब कोई नहीं तोड़ सकता। लुटेरों की तमाम साजिशें इस एके की चट्टान से टकराकर चकना-चूर हो जायँगी और तुम्हारे नये योरप का जन्म होगा। पीड़ा के साथ। पुलक के साथ। और यही हो भी तो रहा है।

तुम अपनी मुक्ति के लिए पहले भी खून बहा चुके हो, पर सफलता तुम्हें नहीं मिली। खून बहाने का गौरव ही तुम्हारे हाथ रहा। दुनिया-भर के लुटेरों ने तुमको आगे बढ़ते देखकर कुछ देर के लिए अपने आपसी झगड़े भुला दिये और तुम्हारी क्रांति को कुचलने के लिए एक हो गये।

पर इस बार सफलता तुम्हारी है। तब तुम्हारी रक्षा के लिए स्तालिन की लाल फौज न थी। आज है। कोई शक्ति योरप को सच्चे अर्थ में स्वतंत्र, जनता का योरप होने से नहीं रोक सकती, यह विश्वास ही तुम्हें मृत्यु के सम्मुख निडर बनाता है न ?

तुम आगे बढ़ रहे हो। तुम आगे बढ़ते जाओगे, क्योंकि तुमने विजय का रहस्य जान लिया है। तुम्हें अपनी जिन्दगी का मोह नहीं है। तुम मौत को हिकारत की नजर से देखना जानते हो, तुम मौत को एक तुच्छ चीज गिनते हो। मौत तुम्हारे लिए नहीं रह गयी है। जिसने मौत की खिल्ली उड़ाना सीख लिया, उसे कोई नहीं परास्त कर सकता, उसे आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता, उसे कोई नहीं मार सकता, क्योंकि मृत्यु से घृणा करने के पल में ही व्यक्ति अमर हो जाता है।

और यही हमने तुमसे सीखा है !

तुम्हारी जीत हमारी जीत है। आओ, हम कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ें, नये विश्व का निर्माण करें, जिसमें समता का राज होगा। यह मन का लड्डू नहीं है। आदमी का ताजा खून इस पर अपनी मुहर लगा रहा है।

वह देखो, निहाई पर हमारा भविष्य ही तो है। हमें ही तो हथौड़े की चोट करनी है। हाँ, उठाओ हथौड़ा साथी !

साँस जिसकी चलती रहे उसे ही जिन्दा आदमी कहते हैं। अभी थोड़ी देर पहले तक सूर्यकान्त एक जिन्दा आदमी था। क्या हुआ जो तपेदिक ने उसकी रग-रग में, रेशे-रेशे में सहजन की फली की तरह अपनी पतली-पतली, लम्बी-लम्बी उँगलियों के बड़े-बड़े नुकीले नाखून धँसा दिये थे। क्या हुआ जो उसकी जिन्दगी एक कुत्ते की जिन्दगी थी जो बरामदे के किसी कमरे में पड़ा-पड़ा औंघाया करता है, और अपने शरीर में पड़ी हुई किलनियों को बीन-बीनकर खाया करता है।

अपने घर में सूर्यकान्त का भी बहुत कुछ यही हाल था। घर के एक बाहरी कमरे में वह दिन-रात पड़ा रहता, अकेला। घर में वह औरत थी जिसने नौ महीने उसको अपने पेट में रखा था। घर में उससे छोटे-छोटे अनेक लड़के थे, लड़कियाँ थीं, जिन्हें उसने अपने भाई और बहन के रूप में पहचाना था, लेकिन कोई न था जो मौत की घड़ियाँ गिनते हुए उस नौजवान सूर्यकान्त के पास जाकर बैठता, जो दो-तीन साल की अपनी बीमारी में चालीस साल का एक भूख से टूटा हुआ लागर आदमी दीखने लगा था। अपने कमरे में पड़ा-पड़ा सूर्यकान्त अपनी साँसों को दबाया करता और ये गर्म साँसें बाहर न निकलकर अन्दर ही अन्दर जब घुटने लगतीं तब उसका फेफड़ा और भी जैसे जल उठता।...

तो भी उसकी साँस चल रही थी, वह जिन्दा था। अब वह जिन्दा नहीं है, उसकी साँस अब नहीं चलती। उसकी लाश को अभी लोग उठाकर ले गये हैं। जिस कमरे में वह मरा था, उसी की चौखट पर सूर्य-

कान्त की बीवी रमा अपने छः-सात महीने के बच्चे को लिये हुए बैठी है। दो बार उसने चौखट पर सिर पटक-पटक दिया था, जिससे उसके माथे में घाव हो गया था। वह कहीं एक बार अपने मन की सारी ताकत लगाकर इस जोर से चौखट पर अपना सिर न दे मारे कि उसकी जिन्दगी का खेल-तमाशा ही खत्म हो जाय, इस दुर्घटना को बचाने के लिए दो औरतों ने मजबूती से उसे अपनी बाँहों में कस रखा था। इसमें शक नहीं कि उन्होंने दया के मारे ही ऐसा किया होगा, लेकिन रमा को लगा कि वे बैर के मारे उसे नहीं मरने देतीं। वे नहीं चाहतीं कि वह बिना विधवा की जिन्दगी का पूरा मजा चखे इस दुनिया से विदा हो जाय! जिस मुजरिम को फाँसी की सजा होती है उसे अगर कोई रोग हो जाय तो न्याय का यह आदेश है कि मुजरिम को रोग से कभी न मरने दिया जाय, उसे अच्छे से अच्छे डाक्टरों की मदद से जल्द अच्छा करके फाँसी पर टाँगा जाय।

रमा के आँसू चुपचाप बह रहे हैं। जोर-जोर से रोने की ताकत अब उसमें नहीं है। धाड़ें मारकर रोने की आवाज घर के अन्दर से आ रही है। मकान का मुँह पच्छिम को है। इसलिए अब डूबते सूरज की पीली किरणें बरामदे में आकर गिर रही हैं, जहाँ रमा और दूसरी औरतें बैठी हैं। रमा का बच्चा बहुत छोटा है, लेकिन माँ को और दूसरी औरतों को रोते देखकर, घर के अन्दर से उठनेवाले कोहराम को सुनकर और वातावरण के अजीब भयानकपन से डरकर वह भी बुरी तरह चिल्लाने लगा था। लेकिन अब रमा को उसके रोने-चिल्लाने की कतई परवाह नहीं है। वह आदमी जिससे उसे डर लगता था, उसका आदमी, अब मर चुका है; अभी उसके सामने से उसकी लाश को लोग उठा ले गये हैं। अब उसे किस बात का डर?

उसकी आँख से आँसू फिर झर-झर बहने लगे। उसे ध्यान आया कि उसका पति बच्चे के रोने को बिलकुल न सह पाता था। बच्चा रोया नहीं कि उसका पारा चढ़ा। गुस्से में आकर वह बच्चे को मारता, पत्नी

किसको नहीं होती ! और जो अपनी इस जरा-सी हविस को भी पूरा न कर सके, उससे ज्यादा अभागा और कौन हो सकता है !

यों तो रमा क्या किसी से कम अभागी थी जो एक तपेदिक के रोगी के साथ ब्याही गयी और दो साल की विवाहित जिन्दगी के बाद ही सोलह साल की उम्र में विधवा हो गयी। इतनी कम उम्र में ब्याही गयी, इतनी कम उम्र में बच्चा हुआ और इतनी कम उम्र में विधवा हो गयी — औरत की जिन्दगी के सभी काम रमा ने इतनी कम उम्र में पूरे कर डाले। जो काम करना है उसमें देर करने से फायदा ! अब उसे रांँड की जिन्दगी बिताने के लिए बहुत फुर्सत थी। अपने से लड़ने के लिए बहुत वक्त था।

रमा के पिता ने जान-बूझकर अपनी लड़की को कुएँ में ढकेला हो, यह बात नहीं है। उनको शादी हो जाने के बहुत दिन बाद पता चला। तब सिवा माथा ठोंक लेने और भाग्य की लकीर का रोना रोने के और कुछ नहीं किया जा सकता था। शादी के वक्त बाबू कालिकाप्रसाद ने उनको इस बात की हवा भी न लगने दी कि लड़के को कोई बीमारी भी है। अपने लड़के की जिन्दगी और पराये घर की नादान लड़की की जिन्दगी के तहस-नहस हो जाने का डर भी बाबू कालिकाप्रसाद को सूर्य-कान्त की शादी करने से नहीं रोक सका। यह सही है कि सूर्यकान्त ने खुद शादी के लिए बहुत उतावलापन दिखलाया था और कहा था कि अगर आप लोग मेरी शादी नहीं कर देंगे तो मैं अपनी शादी खुद कर लूँगा। लेकिन इसका हरगिज मतलब नहीं था कि सूर्यकान्त की इस बेजा इच्छा को पूरा किया जाय और लड़के के साथ-साथ एक नादान बेकस लड़की की जिन्दगी चौपट कर दी जाय, उसके गले में फाँसी लगा दी जाय। कौन नहीं जानता कि तपेदिक के रोग में रोगी का मन उसके काबू में नहीं रह जाता। मुहल्ले के कितने ही बड़े-बूढ़े लोगों ने, जो मुख्तार साहब के करीबी दोस्त थे, चुपके-चुपके कहा—मुख्तार साहब, लड़के की शादी मत कीजिए, उसे तपेदिक है। तपेदिक में शादी जहर है। मुख्तार साहब

ने अपनी सफाई देते हुए कहा—लड़का मानता जो नहीं। कहता है, अगर आप लोग मेरी शादी न कर देंगे तो मैं अपनी शादी खुद कर लूँगा। लोगों ने कहा—ऐसी हालत में आपका फर्ज है कि सब जगह जाहिर कर दें कि लड़के को तपेदिक है। कोई बाप आप ही अपनी लड़की की शादी उससे न करेगा। मुख्तार साहब को यह बात बुरी लगी। उन्होंने मुँह बिचका दिया जैसे बहुत पुराना बहुत तेज सिरका काफी सा पी गये हों। बोले—भाई, यह तो अपने राम से न होगा कि अपने ही लड़के के खिलाफ साजिश करूँ। तिवारीजी ने कहा—यह तो आपकी सरासर ज्यादती है। इसका मतलब तो यह है कि आप एक निर्दोष लड़की की हत्या करने पर तुले हैं। अगर आपने लड़के की शादी की तो लड़के और बहू की हत्या के पाप का भागी आपको बनना पड़ेगा। मुख्तार साहब बेहया आदमी की तरह हँस दिये। बोले—आप भी कैसी बातें करते हैं तिवारी जी! अभी तो उसकी बीमारी को पहली स्टेज है। तिवारीजी ने चुटकी ली—तभी आप उसकी शादी कर देना चाहते हैं जिसमें उसकी बीमारी जल्दी ही आखिरी स्टेज पर पहुँच जाय।...

बहरहाल मुख्तार साहब पर किसी बात का कोई असर न हुआ और उन्होंने अपने लड़के की बीमारी की बात दबाकर उसकी शादी कर दी।...रमा ने अपने मन में कहा, अभी उस दिन शादी हुई थी और आज लोग मेरे सामने से उनकी लाश उठाकर ले गये हैं।...रमा का चेहरा बहुत अजीब-सा है—हरदम उस पर व्यथा की एक बहुत गहरी छाप रहती है—उसके चेहरे की गढ़न ही कुछ ऐसी है। फिर जब वह रोती है तो बारिश में नहाये हुए पत्तों जैसा उसका चेहरा निखर आता है।

'उनके अन्त समय भी सास-ससुर ने धोखा दिया जो मैं उनके दर्शन नहीं कर सकी', और उसका मन कराह उठा। लेकिन वहाँ उसकी कराह को सुननेवाला कोई नहीं था। जो औरतें उसके साथ बैठी थीं, वे टोला-पड़ोस की थीं, परिवार से उनका कोई विशेष सम्बन्ध न था। जिनका परिवार से सम्बन्ध था वे तो अन्दर बैठी थीं और रो-रोकर अपने

हृदय की सारी पीड़ा बहा डालने की कोशिश कर रही थीं। बाहरवाली औरतें तो रस्मिया आ गयी थीं। कोई उनको अन्दर ले जाने के लिए नहीं आया। उन्हीं औरतों में रमा भी थी, रमा जिसके सुहाग का सेंदुर पुँछ गया था, रमा जिसके साथ धोखा किया गया, जिसकी जिन्दगी जान-बूझकर तबाह की गयी, जिसके गले पर छुरी चलायी गयी, जो घर के बड़े लड़के की बहू थी। पति के मरने के बाद ही वह पहुँच सकी, सूचना उसे इतनी देर से दी गयी। और पहुँची तो पलक मारते ही दुनिया उसके लिए बदल गयी, सर पर पहाड़ गिर पड़ा, आँखों के आगे अँधेरा छा गया, लेकिन किसी ने उसे ढाढ़स बँधाने की, चुमकारने-पुचकारने की जरूरत नहीं समझी, किसी ने उसके आँसू नहीं पोंछे, कोई उसको घर के अन्दर नहीं ले गया। वह घर उसका नहीं था। वहाँ उसका कोई अपना न था। सबको उसकी सूरत से नफरत थी। उसका क्या अपराध है, वह नहीं जानती। लेकिन सब उससे जलते हैं। जिस सास ने उसकी जिन्दगी को हमेशा के लिए अँधेरा कर दिया, उनकी आज कहीं शक्ल नहीं दिखलायी पड़ी कि वे इस निरीह लड़की का दुख कम करतीं, दुख जो उसको उन्हीं लोगों के कारण भोगना पड़ रहा है।

रमा वहीं बाहर बरामदे में बैठ गयी और बैठी रही। डूबते सूरज की रोशनी उसके चेहरे पर पड़कर उसे और भी पीला बना रही थी। घर के अन्दर बैठी हुई औरतों ने उसके माथे का सेंदुर पोंछने में बड़ी तत्परता दिखलायी थी और इस वक्त सूरज की पीली रोशनी में उसका यों ही पीला, मुरझाया हुआ चेहरा पीली मट्टी से पोती हुई पट्टी का-सा दीख रहा था जिस पर गाँव के लड़के ने ककहरे का पहला अक्षर भी न लिखा हो। घर की औरतों को उससे कोई सरोकार नहीं था। वे उसे बिल्कुल भूल चुकी थीं और उनमें से कई, काफी रोना-गाना करने के बाद अपने बाल-बच्चों की, गृहस्थी की, बीमारी-आरामी और महँगी की बातें करने लगी थीं।

दूसरों को रमा की चिन्ता रही हो चाहे न रही हो, पानी की बाल्टी

और झाड़ू लिये वहीं पर खड़ी नौकरानी को उसकी चिन्ता ज़रूर थी। बार-बार मालकिन का हुक्म हो रहा था कि बरामदे को धो डाल, वहीं पर लाश रखी गयी थी। लेकिन वह बरामदा धोये तो कैसे जब वहाँ पर चार औरतें बैठी हुई हैं। और उनको वह वहाँ से हटने को कहे कैसे—इतनी हिम्मत भी तो होनी चाहिए। और टोले-पड़ोस की औरतों की बात होती तो चाहे वह एक बार हिम्मत करती भी; लेकिन जब बहूरानी भी वहीं बैठी हैं...

आयीं मालकिन की बड़ी बहिन और कह गयीं—रुपिया, बरामदा धो डाल। रुपिया ने सुना, लेकिन उससे कहते न बना कि बहूरानी बैठी हैं। मौसी जी हुक्म लगाकर चली गयीं और रुपिया फिर पानी की बाल्टी और झाड़ू लिये खड़ी रही। रमा पर कोई असर न था, उसने इन लोगों की बात सुनी भी या नहीं, कहना मुश्किल है।

फिर आयीं मालकिन की मँझली लड़की प्रेमा। पाँच साल हुए उनकी शादी को। अब दो बच्चों की माँ हैं। शादी के बाद और बच्चे होने के बाद उनका शरीर और भी भर आया है, चेहरा, बाँहें, वक्ष, सभी कुछ। खत्रानियों जैसा उनका शरीर है, गोरा-चिट्टा, गदराया हुआ। उनका साज-शृङ्गार भी वैसा ही है। कमर में भारी-सी करधनी, हाथ में पन्द्रह-पन्द्रह चूड़ियाँ और ब्रेसलेट, कान में ऐरन, पैर में ढेर-ढेर से लच्छे और बिछिये। बाल खूब सँवारे हुए, खूब मोटी-सी चोटी, खूब चौड़े किनार की पतली, रंगीन, मिल की धोती। रुपिया को प्रेमा के साज-शृङ्गार पर बड़ा अचरज हुआ। उसने मन में कहा—कैसी हैं बिटिया जो आज भी इनका साज-शृङ्गार छूटा नहीं, वैसे ही तेल फुलेल करके साँड़ की तरह घूम रही हैं। इनको घर की गमी तक की कोई फिक्र नहीं, एक पेट का भाई मरा है, लेकिन माथे पर शिकन नहीं, सिंगार-पटार में कोई फरक नहीं।

प्रेमा ने कहा—महरी, खड़ी-खड़ी मुँह क्या ताक रही है, बरामदा क्यों नहीं धो डालती?

महरी ने कुछ कहा नहीं, पूर्ववत् चुपचाप खड़ी रही। उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या करे। प्रेमा चली गयी। प्रेमा की बात सुनकर रुपिया का कलेजा जैसे सुलग उठा। कैसा हुक्म चला गयीं रानी साहब! लाज नहीं आती, ऐसा बन-ठनकर घूम रही हैं। आज तो सिंगार न किया होता! इनके लेखे सबका मरना-जीना बराबर है। फिर रमा को वहीं पत्थर की तरह निश्चल बैठी देखकर उसके मन में विचार आया—कैसे कहूँ कि बहूजी, उठ जाइए, यहाँ पानी डालना है। उसके हृदय की पीर को रुपिया ने अनुभव किया और उसी अनुभूति ने उसकी जबान पर ताला जड़ दिया। उसकी हिम्मत ही न पड़ती कि रमा से कुछ भी कहे—जो बियाबान में खड़े उस पेड़ के समान थी जिस पर बिजली गिरी हो। रुपिया ने अपने मन में कहा—कौन समझ सकता है बहूरानी की पीर? इनकी तो जिन्दगी उजड़ गयी। अब रहा क्या, अभी यहाँ बैठी हैं, उठाकर कहीं और बिठाल दो वहीं बैठ जायँगी। इनकी पीर समझाऊँ मँझली बिटिया को, जो आज ऐसे सँवरकर इठलाती घूम रही हैं जैसे शादी-ब्याह का घर हो।

तब आयीं प्रेमा की भावज, चचेरे भाई की पत्नी। उन्होंने तो बहुत सादगी से आकर मालकिन का हुक्म दोहरा दिया और घर के अन्दर चली गयीं। किसी पर कोई असर न हुआ।

तब रिपोर्ट हुई मालकिन से और उनका चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। मालकिन बिल्कुल मारवाड़िन दीखती हैं, पेट करधनी से दस इंच बाहर निकला रहता है। कमर से छोटी-बड़ी पन्द्रह-बीस चाभियों का गुच्छा लटकता रहता है। माँग-पटिया के मामले में इस लम्बी उम्र में भी जब कि उनके कई नाती-पोते खेल रहे हैं, उनमें कोई ढिलाई नहीं आयी है। चौड़ी-सी माँग निकालकर उसमें पौवा-भर सेंदुर भरेंगी—दूर से देखने से लगेगा कि किसी ने जोर से सर पर लाठी मारी है और सर खुल गया है—माथे पर बड़ा-सा टीका देंगी, हरदम मुँह में तमाखू, सुपारी, कत्था, चूना, लौंग भरे रहेंगी।

मालकिन का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा और वह झमककर बाहर गयीं और रास्ते-भर रमा को गंदी-गंदी गालियाँ—जो कि औरतें ही सुना सकती हैं—सुनाती गयीं। बरामदे में पहुँचकर महरी को जोर से डाँटा—तू बड़ी सिर-चढ़ी हो गयी है रुपिया! रुपिया ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला, लेकिन मालकिन रुकीं नहीं—घंटे-भर से मैं कह रही हूँ कि बरामदा धो डाल, बरामदा धो डाल, लेकिन कान पर जूँ भी नहीं रेंगती। हरामजादी, मारते-मारते खाल उधेड़ लूँगी।

रुपिया बिल्कुल खिटपिटा गयी। वह यों भी मालकिन को बाघ के समान ही डरती है। लेकिन आज उसने उनका जो चंडी-रूप देखा वह पहले कभी नहीं देखा था। बिल्कुल काँप गयी। मालकिन के इलाके पर की है, इसलिए मालकिन अगर सचमुच मारते-मारते चमड़ी उधेड़ लें तो भी ताज्जुब नहीं, कहीं उसकी कोई सुनवायी नहीं होगी, खेत चला जायगा, झोंपड़ी में आग लगवा दी जायेगी। रुपिया इस बात को अच्छी तरह समझती है। जानती है कि मालकिन अपने हाथ से मारते-मारते उसकी चमड़ी उधेड़ ले सकती हैं।

तो भी काँपते-काँपते उसने कहा—बहूरानी...

शेर को गोली लगने से जैसे वह तड़पकर गोली चलानेवाले पर वार करता है, मालकिन ने उसी तरह रुपिया पर वार किया—बहूरानी...राँड। तू पानी डालती क्यों नहीं, नहीं हटेगी तो रंडी आप भीग जायेगी। खड़ी मुँह क्या ताक रही है, डाल पानी, डाल।

और रुपिया ने बाल्टी का पानी लुढ़का दिया। रमा तो पत्थर की मूर्ति हो गयी थी। वह अपनी जगह से जरा भी न सरकी। पानी आया और उसके पेटीकोट और धोती के निचले छोर को भिगोता हुआ बह गया। फिर रुपिया ने झाड़ू से पानी इधर-उधर मार दिया और बरामदा धुल गया। मालकिन घर के अन्दर चली गयीं। फिर शान्ति छा गयी। रमा थोड़ा अन्दर सरक कर बैठ गयी। उसकी करुण मुखमुद्रा देखकर खामोशी से बैठी जुगाली करती हुई गाय का ध्यान सहसा आ जाता।

रमा जुगाली करती हुई बैठी थी। उसके मुँह में उसकी चबायी हुई जिन्दगी थी। दूसरों की चबायी हुई उसकी जिन्दगी। उसका मन विफल आक्रोश से भर गया और...

उसे ध्यान आया उस दिन का जब मालकिन ने उसे रोटी चुराकर खाने पर से मारा था। मालकिन मकान के पिछवाड़ेवाले बाड़े का इन्तजाम देखने और वहीं खेत से टमाटर तोड़ने के लिए गयी हुई थीं। बारह बजे दिन का वक्त था, मुखतार साहब कचहरी जा चुके थे, सभी लड़के-लड़कियाँ अपने-अपने स्कूल चले गये थे। घर में बस रमा अकेली थी। रमा को बहुत जोर की भूख लगी हुई थी। सवेरे का खाया हुआ चार दाना पेट में आखिर कितनी देर चलता? और जवान लड़की का शरीर। कसकर भूख लग आयी, लेकिन खाना निकालकर खा नहीं सकती, क्योंकि सासजी का हुक्म है कि मेरे साथ खाओ। वह एक डेढ़ के पहले कभी खातीं नहीं—उसके पहले उनकी भूख ही नहीं खुलती। तो उनके लिए तो वह वक्त बहुत ठीक है, लेकिन अब बेचारी रमा अपने पेट को क्या करे जो उसे दस ही बजे से भूख सताने लगती है। दस से लगाकर एक डेढ़ तक खाने का इन्तजार करना रमा को एक सदी का इन्तजार मालूम होता, अग्नि-परीक्षा जान पड़ती। व्यर्थ की अग्नि-परीक्षा! लेकिन रमा में इतना साहस न था कि सासजी का हुक्म न माने। लाचार वह रोज उतना इन्तजार करती। सासजी उसे लड़की समझतीं ही नहीं, बड़ी-बूढ़ी गिरस्तू औरत समझती हैं, जिसे सबको खिलाकर खाना चाहिए, चाहे आँतें कितना ही कुलबुलाएँ—यही तो सारी मुश्किल की जड़ थी।... उस दिन भूख के मारे बेचारी से जब्त न हुआ और जब सासजी नीचे मकान के पिछवाड़े गयी हुई थीं, रमा चौके में चली गयी और एक रोटी और दाल निकालकर जल्दी-जल्दी मुँह मे भरने लगी, जिसमें सासजी के आने के पहले ही वह हाथ-मुँह धोकर बैठ जाय; लेकिन कुछ ऐसी बदकिस्मती थी कि सासजी एक तरह से तत्काल ही वापस आ गयीं। देखा, रमा चौके ही में बैठी जल्दी-जल्दी रोटी-दाल भकोस रही है। देखते ही उनके

गुस्से का ठिकाना न रहा। रमा की बुरी दशा थी—अन्दर की साँस अन्दर बाहर की साँस बाहर। उसकी चोरी जो पकड़ी गयी थी।

मालकिन ने आवाज देकर रमा को बाहर निकाला और घुड़ककर पूछा—क्या कर रही थी?

बेमतलब सवाल! इस सवाल का भी कोई जवाब है? बदतमीजी का सवाल। रमा खामोश रही। मालकिन ने दो-तीन बार अपनी बात को दोहराया, लेकिन रमा की तरफ से कोई जवाब नहीं। इससे मालकिन और भी आगबबूला हो गयीं। चोरी की चोरी, ऊपर से सीनाजोरी—'चुराकर खाती है और फिर बात पूछी जाती है तो जवाब भी नहीं देते बनता। कोई भूँका करे, इनके ठेंगे से, इन्हें तो अपना ढींढ़ा भरने से मतलब।' रमा जवाब देती भी तो क्या देती। चुप बैठी रही। सासजी थोड़ी देर खामोश रहीं और फिर जैसे उनके भीतर उफान आया। बोलीं—क्यों री कलमुँही, तेरे माँ-बाप तुझे भरपेट खाने को भी नहीं देते थे क्या जो तेरी चोरी की आदत पड़ गयी है? रमा के मन में सच्चा जवाब बिजली की तरह कौंध गया—अपने घर मे मुझे चोरी का सहारा नहीं लेना पड़ता था, जो कुछ रूखा-सूखा घर में बनता था उसी में सबको खाना होता था और सब मजे में खाते थे। चोरी तो मुझे इसी घर में करनी पड़ती है, जहाँ एक-एक टुकड़े के लिए मुझे दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है...लेकिन सच जवाब से फायदे की जगह नुकसान की ही ज्यादा गुंजाइश थी—इस कच्ची उमर में ही रमा सीख गयी है कि विशुद्ध सत्य का भार उठाने का बल आज के संसार में नहीं है। चुप रह जाना ही उसने ठीक समझा, सौ रोगों का एक इलाज। लेकिन सासजी ने उसके माँ-बाप का नाम लिया था, यही बात उसे अखर रही थी—काँटे की अनी अन्दर ही टूट गयी थी और दुख रही थी। चढ़ती, उबाल पर की उमर, कोई तीखा, जहर में बुताया हुआ जवाब देने के लिए तबीयत मचल उठी, लेकिन साथ ही रमा अपनी स्थिति की असहायता से भी बेखबर न थी, इसलिए उसने दबी जबान से सिर्फ इतना कहा—अम्माजी, आप मेरे अम्मा-बाबू को कुछ न...

बात पूरी भी न हो पायी कि सासजी के बलिष्ठ हाथ का एक भरपूर तमाचा रमा के गाल पर पड़ा और पाँचों उँगलियाँ गाल पर उभर आयीं; रमा अपनी बेबसी को समझकर लगी फूट-फूटकर रोने। उसके आँसू देखकर सासजी को और आवेश चढ़ा और उन्होंने गला फाड़कर कहा—'टेसुए ढरकाती है छिनाल! तेरा खसम तुझे बचा ही तो लेगा जैसे! तेरे दोनों के मुँह में लुआठी लगा दूँगी, समझ रखना!...मुझसे तो यह तिरिया चरित्तर न खेल हरामजादी!' कहकर रमा पर पूरा हमला कर दिया और तमाचों, लात-घूँसों से उसका भुर्ता बना दिया।...

तब रमा ने यह बात किसी से भी नहीं कही थी, अपने पति से भी नहीं, क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि माँ-बेटे में रंजिश हो। उसने अन्दर ही अन्दर सारे दर्द को दबा लिया था। इसीलिए आज, जब कि उसकी कहानी को धैर्य के साथ सुननेवाला भी कोई नहीं है, उसका सारा वह पुराना दर्द पुरवा चलने पर किसी भूली-बिसरी चोट की तरह चिलक उठा है। उसे लगा कि उसके शरीर का एक एक जोड़ दुख रहा है।

तभी रुपिया का लुढ़काया हुआ पानी आया और अपने साथ इस स्मृति को बहा ले गया। लेकिन नहीं बहा ले जा सका उसकी पीड़ा को। उसके मन को मरोड़ती हुई एक दूसरी स्मृति उठी—

'बच्चा तब पेट में था। रमा ने अपनी सासजी से कहा—माँजी, मुझे मैके न भेजिए! मुझे यहीं एक कमरा दे दीजिएगा। मैं किसी को कोई तकलीफ न पहुँचाऊँगी। मुझे घर जाते लाज लगती है। अम्मा-बाबूजी के सामने कैसे जाऊँगी! मुझे मत भेजिए, माँजी! बच्चा हो जाने पर भेजिएगा...

मुस्कुराहट को अपने से कोसों दूर रखते हुए, कसाई की-सी मुद्रा में सासजी ने क्रूरता से कहा—पेट फुलाते बखत लाज नहीं लगी; अब बियाने का बखत आया तो लाज लगती है!

ताने की बातें विद्रूप की हँसी के साथ कहने का रिवाज है। लेकिन सासजी ने यह रिवाज तोड़ दिया है, क्योंकि उनका विश्वास है कि हँसी जिस तरह की भी हो बात के प्रभाव को नष्ट कर देती है।

रमा उस दिन भी (अभी उस बात को हुए भी कितने दिन, मुश्किल से नौ-दस महीने) सासजी की बात सुनकर काँप गयी थी और आज उसे याद करके फिर काँप गयी। ज्यादा नहीं, बस एक बार हल्की-सी कँपकँपी। रमा आज तक इस बात को नहीं समझ पायी है कि उसे किस अपराध का दण्ड दिया जा रहा है। उसने किसका क्या बिगाड़ा है जो उसके साथ सभी लोग इतनी क्रूरता से पेश आते हैं। रमा शान्त स्वभाव की लड़की है, लेकिन इन सारी पिछली बातों को याद करके उसको ऐसा लगता कि खून की जगह लालमिर्चों का घोल उसकी धमनियों में बह रहा है और उसका सारा शरीर, भीतर-बाहर, क्षत-विक्षत है। रमा का दम-सा घुटने लगा और बहुत बेचैनी हो गयी। उसका मन न आज की बड़ी विपत्ति पर पूरे समय टिक पाता और न बीते कल की उन तीखी-तीखी बातों पर जिन्हें सोचकर आज भी उसका कलेजा मुँह को आता है।

रमा उसी तरह बैठी रही—मुख की मुद्रा भावहीन, बिल्कुल भाव-हीन। पीड़ा का अनुभव करने की क्षमता कबकी उससे विदा हो चुकी थी। वह तो बस बैठी हुई थी, क्योंकि दूसरा कुछ उसे सूझ ही नहीं रहा था और सूझता भी क्या!

अब अन्दर फिर बहुत खलबली मची हुई थी। शाम होती जा रही थी। शाम को थोड़ी ठंडक भी पड़ने लगी थी। गमी में आयी थीं औरतें। घर जाने के पहले सूतक से शुद्धि के लिए नहाना जरूरी था। धूप रहते नहा लेतीं तो कम तकलीफ होती। नहाने में जितनी ही देर होगी, तकलीफ उतनी ही बढ़ेगी। लेकिन वे जल्दी नहायें कैसे, वह पापिन राँड जो अभी नहीं नहायी है। रमा नहा ले तब तो दूसरे लोग नहायें।

लेकिन रमा को नहाने-धोने का ध्यान कहाँ। वह तो बिल्कुल जड़ हो गयी थी। इतनी कि उसे इस बात का ध्यान भी न था कि अगर अपने लिए नहीं तो कम से कम उन औरतों का खयाल करके नहा डाले। पर इतनी समझ भी उसमें नहीं थी। अन्दर इसी बात की खलबली मची हुई थी। सबके सामने यही समस्या थी कि किस तरह

रमा को नहाने के लिए कहा जाय, वह किसी की सुनती ही नहीं। जब किसी को कोई हल न सूझा तब मालकिन ने एक हल निकालकर सबका उद्धार किया...

...रमा बिल्कुल नहा गयी, कपड़े-वपड़े सब बिल्कुल भीग गये।

रुपिया ने एक बाल्टी पानी लाकर रमा के सिर पर उँड़ेल दिया था। अब रमा ने नहा लिया था और अब दूसरी औरतों के लिए भी जल्दी जल्दी दो-दो लोटा पानी डालकर शुद्ध हो जाने का रास्ता खुल गया था।

झुरझुरी के बावजूद रमा बैठी रही। लेकिन, अब उसके छोटे भाई से, जो उसके साथ आया था, और न सहा गया। बच्चा था, और न देख सका। बोला—दीदी, चलो।

रमा उठ खड़ी हुई, आखिर कब तक यों ही बैठती। धीरज का भी अन्त होता है। पास खड़ी औरतों को सुनाकर बोली—बड़ा गुमान है इस घर का, तो इतना समझ लें मालकिन कि भगवान हमारा भी है। जो कुछ उन्होंने हमारे साथ किया है, वह सब उसने देखा है, एक-एक ईंट इस मकान की न खिसक जाय तो कहना, मुँड़ेर चढ़कर उल्लू न बोले तो कहना। थू।

और वहीं थूककर, वह गीले कपड़े पहने, बच्चे को गोद में लिये, सर्दी में काँपती अपने भाई के पीछे-पीछे चलने लगी। चलते-चलते वह सोच रही थी कि वह एक दुनिया में आग लगाकर जा रही है। लेकिन कहीं आग-वाग न थी। वह दुनिया अपनी जगह पर बदस्तूर कायम थी। रमा के थोड़ी देर बाद प्रेमा, वैसी ही बनी-ठनी, सजी-सँवरी, अपने छोटे देवर के साथ निकली और अपने घर चल दी। मातमपुर्सी खतम हो गयी थी। रोने-गानेवाली दूसरी औरतें भी थोड़ी देर बाद निकलीं और अपने-अपने घरों को चली गयीं।

जिस कमरे में सूर्यकान्त मरा था, वह अब सूना-सूना लगता। यही सबको खटकता। आखिरकार कमरे को फिनट वगैरह से धो-

धाकर और वहाँ बहुत-सी नीम की पत्तियाँ जलाकर उससे तपेदिक को निकाल बाहर किया गया और कमरा यूनिवर्सिटी के एक विद्यार्थी को पाँच रुपये महीने किराये पर दे दिया गया। सारा सूनापन जाता रहा। और लोग सूर्यकांत को एक अशुभ सपने की तरह भूल जाने की कोशिश करने लगे। सती साध्वी रमा का शाप विफल हुआ। कोई भी जाकर देख सकता है, १७ नेलसन रोड पर घर अब भी खड़ा है, उसकी एक ईंट भी नहीं खिसकी।

'आप पढ़ेंगे क्या ?'

'जी हाँ, सोचता था। क्यों आप लेटना चाहते थे ?'

'जी हाँ। मगर कोई बात नहीं, मैं इधरवाली बर्थ पर लेट जाऊँगा। काफी जगह तो है।'

'जैसी आपकी मर्जी।'

फिर थोड़ी देर खामोशी रही। पर ज्यादा देर नहीं। उन्हीं महाशय ने फिर कहा—क्यों आँखें फोड़ते हैं। वहाँ रोशनी काफी नहीं है।

मैंने कहा—मुझे तो दीख पड़ता है। इतनी बहुत तो कम नहीं है रोशनी।

उन्होंने कहा—जी नहीं, रोशनी तो यकीनन् बहुत कम है। आपकी आँखें अभी मजबूत हैं इसलिए आपको पता नहीं चलता। आगे चलकर आप अफसोस करेंगे।

एक बिलकुल अपरिचित मुसाफिर को मुझसे इतनी मुहब्बत क्यों हो गयी है, यह मेरी समझ में नहीं आया। और यह समझ में आने जैसा बात भी नहीं थी; क्योंकि आजकल सब अपनी ही परीशानियों से इतना घिरे रहते हैं कि किसी को किसी दूसरे की सुनने की फुर्सत नहीं है, यों सलाह देना तो दूर की बात है! और सो भी रेल के सफर में? वहाँ तो सब अपनी जुगत बिठलाने ही में लगे रहते हैं। कैसे डब्बे में घुसें, फिर

खड़े होने की जगह कहाँ मिले, फिर बैठने के लिए किधर जगह की जाय, फिर रात हो रही है, लेटने के लिए क्या इन्तजाम हो। जहाँ सब इसी किस्म की उधेड़बुन में लगे हों, वहाँ एक अधेड़ आदमी मुझसे इतनी मुहब्बत से बात करे और मुझे यों नसीहत दे जसे कि वह अपने लड़के को नसीहत कर रहा हो, यह ताज्जुब की बात तो है ही। बहरहाल, मुझपर इन बुजुर्ग की बात का बड़ा असर हुआ और मैंने किताब बन्द कर दी।

और इस तरह मेरी मुलाकात अजीज मास्टर से हुई।

× × ×

अजीज मास्टर की उम्र चालीस के करीब होगी, मगर उनके सर के आधे से ज्यादा बाल सफेद हो चुके हैं। गोरा रंग, मँझोला कद, चौड़ी झुर्रीदार पेशानी, बड़ी-बड़ी खिचड़ी मूँछें, पानी की तरह साफ आँखें—कुल मिलाकर वह मुझे बड़े अच्छे लगे। उनकी आँखों और उनके बात करने के लहजे में बड़ा आकर्षण था। उनकी आवाज में भी एक खास तरह की गहराई थी और एक खास तरह का अपनापन। मुझे अन्दर-ही-अन्दर इस ख्याल से बड़ी खुशी हुई कि अब जबलपुर तक यानी और तीन घंटे मेरा-उनका साथ रहेगा और खूब जी खोलकर बातें होंगी।

अजीज मास्टर ने कहा—कहाँ जा रहे हैं आप ?

मैंने कहा—जबलपुर। कल इसी गाड़ी से सागर गया था।

अजीज मास्टर—आप बहुत सफर करते हैं। आपकी हिम्मत कैसे पड़ती है ?

मैं—हिम्मत का इसमें क्या सवाल है। जरूरत के आगे इन्सान हारा है।

अ० मा०—यह आपने बड़ी कड़वी बात कही।

मैं—क्यों ?

अ० मा०—मैं कटनी के एक स्कूल में मास्टर हूँ ; पर मुझे नौकरी से हमेशा बड़ी नफरत रही है। क्या बताऊँ आपको, कितना भागता हूँ मैं नौकरी से। लेकिन आखिर हार माननी पड़ी। वही बात जो अभी आपने कही, जरूरत से इन्सान हारा है।

अजीज मास्टर उदास हो गये और कुछ सोचने लगे।

मैंने कहा—आपने बताया नहीं।

अ० मा०—नौकरी से बचने के लिए मैं कहाँ नहीं गया—बम्बई, कलकत्ता, लाहौर, मद्रास, कराची—मुल्क के चारों कोने तक हो आया हूँ, काम की तलाश में। मैंने टाटानगर में जमीन पर चादर बिछाकर बिसाती की दूकान भी लगायी है।

मैंने पूछा—आपको नौकरी से आखिर इतनी चिढ़ क्यों है?

अजीज मास्टर ने जवाब दिया—मुझसे किसी की खुशामद नहीं होती और नौकरी बगैर खुशामद के मैंने कहीं चलती नहीं देखी। मुझे तो बड़ी शर्म मालूम होती है जब मैं अपने साथी मास्टरों को हेड मास्टर के सामने दुम हिलाते देखता हूँ। अपनी शख्सियत तो वह घर रख आते हैं, किसी सवाल पर वह अपनी राय नहीं दे सकते। हमारे यहाँ हेडमास्टर की राय ही सारे स्कूल की राय होती है।

मैंने उन्हें चिढ़ाने के लिए कहा—यह तो बहुत अच्छी बात है। इससे तो यही पता चलता है कि वहाँ के मास्टरों में आपस में कितनी मुहब्बत और भाईचारा है!

अजीज मास्टर ने जैसे चौंककर कहा—भाईचारा और वहाँ? तोबा कीजिए साहब। आपको अभी हाल की एक घटना सुनाता हूँ। यह किस्सा आन्दोलन के जमाने का है। आन्दोलन में हमारे स्कूल से भी दो मास्टर जेल गये थे। उनके घर में उनके बीवी-बच्चों की तो जैसे कमर ही टूट गयी। आप जानते ही हैं, स्कूल का मास्टर होना और हमेशा पैसे-पैसे को मोहताज रहना एक ही बात है। सोचिए उन बेचारों के घरवालों का क्या हाल हो गया होगा। मुझे मालूम है, बच्चे को पाव-भर दूध पिलाने के लिए भी उनके पास पैसे नहीं थे। मैंने स्कूल में अपने साथियों से कहा—ये दो आदमी देश के काम में जेल गये हैं, अब उनके घरवालों की परवरिश की जिम्मेवारी हम लोगों की हो जाती है। अगर हमीं लोग उनकी फिक्र न करेंगे तो वे भूखों मर जायँगे। आओ हम लोग अपनी तनख्वाह

से हर महीने एक-एक रुपया दोनों के लिए निकाल दिया करें। दो रुपये में हम मर न जायँगे, पर उनकी परवरिश हो जायगी। हम सोलह मास्टर हैं। सोलह रुपये में बेचारे अपनी गुजर किसी तरह कर लेंगे।

मैंने उत्सुकता से पूछा—तो फिर देने लगे आप लोग?

अजीज मास्टर ने लगभग चीत्कार करते हुए बड़ी पीड़ा के साथ कहा—जी नहीं, हममें अभी वह इंसानियत नहीं पैदा हुई है जो दूसरे के दुख से दुखी होती है। हमें लम्बी-लम्बी बातें करना ही आता है और हम कहते हैं स्वराज्य लेंगे।

दो पल की खामोशी के बाद अजीज मास्टर ने फिर कहा—एक मुसलमान मास्टर ने पूरे साल-भर यह बात सबसे कही; लेकिन किसके कान पर जूँ रेंगती है। हर महीने तनख्वाह मिलते ही लोग अपने बटुओं में ठूँसते और अपने-अपने घर की राह लेते, मैं महीने-के महीने भूँकता रहा लेकिन बेसूद। और आप यह भी न भूलिए कि ये जो दो मास्टर जेल गये थे, मुसलमान नहीं, हिन्दू थे।......और फिर हम कहते हैं कि हमें स्वराज्य मिलना चाहिए। यही इंसानियत है जिस पर हम स्वराज्य माँगते हैं? अपने भाई की मदद की कौन कहे, हम तो उसे फाड़कर खा जायँ अगर हमारा बस चले।

अजीज मास्टर को इन बातों से थकान-सी हो आयी और वह खामोश हो गये।

अजीज मास्टर की बात से मुझे भी बड़ी तकलीफ हुई। साथ ही उनकी बात से एक सवाल मेरे मन में चक्कर काट रहा था।

मैंने पूछा—आपने यह क्यों कहा कि 'एक मुसलमान मास्टर ने'...? यह तो इन्सानियत की बात है, इसमें हिन्दू-मुसलमान का क्या सवाल है?

अजीज मास्टर हँसे। फिर उदास हो गये। बोले—आपके लिए न होगा। हमारे यहाँ तो यही सवाल है।

मैंने कहा—सचमुच बड़े अफसोस की बात है।

अजीज मास्टर को जैसे किसी ने तमाचा मार दिया हो। गुस्से से तिल-

मिलाते हुए बोले—कितनी आसानी से कह दिया आपने 'बड़े अफसोस की बात है' और हाथ धोकर अलग हो गये। लेकिन इसमें आपकी गलती नहीं। आपको नहीं मालूम कैसा जहर हमारे बच्चों को पिलाया जा रहा है... किसी को क्या मालूम...बच्चों का दिमाग...वह नालायक इतना भी नहीं सोचते...

उनकी आवाज एकदम गिर गयी। उन्होंने उसी आवाज में न जाने किससे शिकायत करते हुए कहा—उनको इतना तो सोचना चाहिए कि यही बच्चे कल के रोज जवान होंगे और इन्हीं पर देश की आजादी की लड़ाई का भार होगा। उनके दिमाग में तो यह दुई का जहर न भरें... तुम हिन्दू हो वह मुसलमान है...तुम हिन्दू हो वह मुसलमान है...मगर किसे फिक्र है जनाब...यहाँ तो बड़े इत्मीनान के साथ इस काम को अंजाम दिया जा रहा है।

'और मजाक यह कि देश की आजादी के नाम पर...'

'जी हाँ, यही तो दिल्लगी है...लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि मुल्क के साथ यह दिल्लगी आखिर कब तक चलेगी। अभी काफी दिन नहीं हुए? अभी हमारे दिल नहीं भरे? गुलामी की तमन्ना हमारा दामन आखिर कब छोड़ेगी? सदियों से हम गुलाम हैं। कुत्तों की जिन्दगी बसर करते हैं, दाने-दाने को मोहताज हैं, अच्छी जिन्दगी तो दरकिनार, अच्छी मौत भी हमें मयस्सर नहीं है; लेकिन तब भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं?...मैं कहता हूँ, जो यह कहता है कि हिन्दुस्तान आजाद होगा, झूठा है। हिन्दुस्तान कभी आजाद नहीं होगा। हिन्दुस्तान कयामत के दिन तक गुलाम रहेगा। चूँकि उसे गुलामी पसन्द है। चूँकि वह आजाद होना नहीं चाहता। आजादी का लफ्ज महज उसके लबों पर है, अभी वह उसके सीने का दाग नहीं बना है। वह दिल से आजादी नहीं चाहता, वह जी बहलाने को आजादी के तराने गा लेता है। दिल से आजादी चाहना आसान काम नहीं है जनाब। उसके लिए आपको अपने सीने पर आजादी का लफ्ज और लफ्ज ही नहीं परचम नक्श करना पड़ता है।

और मैं कहता हूँ एत्तहाद ही यह आजादी का परचम है, लेकिन हाय रे हम, यह दुई हमारा पीछा नहीं छोड़ती, नहीं छोड़ती, नहीं छोड़ती। इतने कसकर उसने हमको अपनी गिरफ्त में ले रखा है...झूठी हैं तमाम आजादी और स्वराज की बातें जब तक इस गिरफ्त से हम नहीं निकलते।'

'और वही लोग जो यह जहर फैलाते हैं, अपने को सबसे बड़ा वतन-परस्त समझते हैं। मुसलमान भी वतनपरस्त हो सकता है, यह उनकी समझ ही में नहीं आता। वह कहते हैं मुसलमान हिन्दुस्तान को अपना वतन मानता ही कब है, वह तो अरब की तरफ आँख लगाये रहता है।'

बिच्छू ने जैसे डंक मार दिया हो, अजीज मास्टर काँप गये। अपने शब्द चबा-चबाकर बोले—हिन्दुस्तान का मुसलमान हिन्दुस्तान ही को अपना वतन मानता है। मैं तो अपने हिन्दू दोस्तों से कहता हूँ—तुम तो मियाँ, आज मरे कल दूसरा दिन। जलाकर नर्मदा में बहा दिये जाओगे, तुम्हारा नामो-निशान, तुम्हारी खाक भी ढूँढ़े न मिलेगी और मैं ? मैं तो मरकर भी हिन्दुस्तान की छः फुट जमीन लूँगा, पूरी छः फुट।

अजीज मास्टर दिल खोलकर हँसे। फिर बोले—मुझसे बड़े परीशान रहते हैं मेरे स्कूलवाले। फौरन गर्दन नापता हूँ। एक नहीं चलने देता।

गाड़ी भागती चली जा रही थी। हम दोनों थोड़ी देर चुप रहे फिर अजीज मास्टर ने ही कहा—रतन बाबू, आप कयास नहीं कर सकते हैं मेरे स्कूल की फिजा किस कदर दम घोंटनेवाली है। मैं रो-रो पड़ता हूँ। मुझे इतनी तकलीफ होती है कि मैं बयान नहीं कर सकता। हमारे यहाँ आठ-आठ साल के लड़कों और पंद्रह-सोलह के जवानों को यहा सिखाया जाता है कि मुसलमानों को मार डालो, हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है। पर मैं आपसे पूछता हूँ, दस करोड़ मुसलमानों को मार डालना क्या कोई आसान काम है ? मार सकिए तो मारिए, मुसलमान भी अपनी हिफाजत तो आखिरकार करेगा ही ; यों ही तो वह मर न जायेगा। लड़िए, काटिए एक दूसरे का गला। यही तो रह गया है अब। कयामत के दिन तक अंग्रेजों के जूते खाना ही तो बदा है। अंग्रेजों के जूते खाने से हमारी

तबीयत नहीं अघाती। ...हमारे एके में क्या ताकत है, इसका शायद उन्हें अन्दाज नहीं, नहीं तो वे शायद —

'उन्हें कुछ अन्दाज नहीं और सब अन्दाज है। वह सोचते नहीं। जहर फैलाने की पिचकारी से ज्यादा वह कुछ नहीं।'

'लेकिन वही तो हैं जिनसे लाज है वतन की। मुझे तो हँसी आती है कभी-कभी, बेअख्तियार। हमारे स्कूल में एक हिन्दू मास्टर हैं जिन्हें बिगुल बजाना आता है। इत्तफाक से वही स्कूल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आला अफसर भी हैं। एक लड़का उनसे बिगुल बजाना सीखने गया। उन्होंने उसे सिखाने से इन्कार कर दिया। कहा—पहले हमारे संघ के मेंबर बनो, तब सिखायेंगे। और आप तो जानते ही हैं उस संघ में क्या सिखाया जाता है। इस बात के लिए वहाँ उन्हें तैयार किया जाता है कि दंगा होने पर मुसलमानों को कैसे मौत के घाट उतारना चाहिए।'

'छी-छी; और नाम है राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ!'

'जी हाँ, अपने नाम को धब्बा लगाने से भी यह बाज नहीं आते। एक दफे का और किस्सा सुनिए। मैं एक लड़के को सीने पर पत्थर रख-कर तुड़वाना सिखलाता था। जब वह इस फन को अच्छी तरह जान गया तो मैंने एक दिन स्कूल के किसी खास मौके पर उसका खेल करवाने की सोची। आरे वह दिन आया। वह शाम आयी, जब उसका खेल होने-वाला था। भीड़ हॉल में जबर्दस्त थी। उसी वक्त इन्हीं जहर के सौदागरों ने प्रचार करना शुरू किया कि अजीज मियाँ बेचारे गोपाल की जान लेने पर तुले हैं। अगर आज यह खेल हुआ, तो गोपाल हरगिज हरगिज जीता न बचेगा। मुसलमान लड़के अगर उसकी छाती पर पत्थर रखेंगे, तो वह जरूर ही उसे मार डालेंगे। लड़के का बाप घबरा गया। अजब सूरत पेश हो गयी थी। देखनेवालों की भीड़ शोर मचा रहा थी और इधर यह गुत्थी पड़ी हुई थी। मैंने गोपाल के बाप को लिख दिया कि आप जरा भी मत घबराइए, गोपाल आपका लड़का नहीं, मेरा लड़का है। इधर गोपाल को बुलाकर मैंने कहा—बेटा गोपाल, तुम सुन रहे हो तुम्हारे वह

मास्टर साहब क्या कह रहे हैं ? गोपाल ने कहा—आप भी किसकी बात करते हैं। उन्हें कोई और काम भी है ? मैंने कहा—समझ लो बेटा। गोपाल ने कहा—मैं खूब समझता हूँ, मुझे और कुछ नहीं समझना है। इन पण्डितजी के तो जी चाहता है—मैंने उसे बेअदबी करने से रोका। लेकिन वह उसी वक्त भाग ही तो गया। उसने जाकर उन पण्डितजी से क्या कहा, यह तो मुझे नहीं मालूम, मगर उस दिन से वह मेरी नजर बचाया करते हैं। आप सोच नहीं सकते एक मास्टर को कितनी खुशी होती है जब उसके लड़के उसका बताया हुआ सही रास्ता अख्तियार करके उस पर अमल करते हैं। वह खुशी और वह मसर्रत सिर्फ एक स्कूल के मास्टर को ही नसीब होती है और अपने लड़कों की मुहब्बत, उनका एत-बार और उनकी इज्जत हा वह चोजें हैं जिनसे स्कूल के मास्टर की हद दर्जे खुश्क और बेमजा जिन्दगी में भी कुछ जान, कुछ हरियाली, कुछ ताजगी आ जाती है। उनके बगैर तो आप यकीन मानिए, मास्टर की जिन्दगी एक चटियल मैदान है।...खुदा झूठ न बुलवाये, उस दिन मुझे बेहद खुशी हुई थी, इतनी कि मैं गा उठा था।

अजीज मास्टर ने उस दिन की पूरी तसवीर मेरी आँखों के सामने लाकर खड़ी कर दी थी और उसी को देखता हुआ मैं अपने खयालों में डूब गया था।

मगर अजीज मास्टर को चैन कहाँ। वह तो अपनी तमाम दौलत लुटाने के लिए बेताब हो रहे थे। जो बातें उनके अन्दर उठ रही थीं, उन्हें निकालकर बाहर लाये बगैर उन्हें चैन कहाँ। बोले—मैं अपने लड़कों का सिर्फ मास्टर ही नहीं, साथी और दोस्त भी हूँ, जिससे वह अपनी कोई बात नहीं छुपाते। और यही वजह है कि उनकी मुहब्बत की शकल में मुझे जो बेशकीमत खजाना मिला हुआ है, उसके आगे सभी कुछ हेच है। मैं भी उन्हें यही नसीहत करता हूँ, हर वक्त उन्हें यही नसीहत करता हूँ कि बेटा, तुम सिर्फ मन्दिर और मस्जिद में जाने के वक्त हिन्दू हो या मुसलमान बाकी वक्त न तुम हिन्दू हो, न मुसलमान, तुम तो हिन्दुस्तानी हो, गुलाम हिन्दुस्तानी जिसके नसीब में लाल मुँह के आदमी की ठोकरें

खाना ही लिखा है। तुम भूल जाओ कि तुम्हारा बाप मुसलमान है या तुम्हारा बाप हिन्दू है। हिन्द की सरजमीन से ही तुम पैदा हुए हो, हिन्द ही तुम्हारी माँ है। तुम्हारी माँ को कुछ सौदागरों ने गुलामी की जंजीरों में कस रखा है। तुम्हीं को ये जंजीरें काटनी हैं और तुम्हीं काटोगे और जरूर काटोगे। और आप सच मानिए मेरी ये नसीहतें बेकार नहीं जातीं, मेरे लड़कों की जेहनियत स्कूल के तमाम दूसरे लड़कों से बिल्कुल अलग है। स्कूल में दूसरे लोग जो जहर फैलाते हैं, वे उससे बिलकुल ऊपर हैं।

इतना कहकर अजीज मास्टर कुछ सोचने लगे। और फिर एक बड़ी लम्बी साँस खींचते हुए बोले—मैं जिन्दगी में बिल्कुल नाकामयाब रहा। वह आदमी जिसने अपनी तालीम के जमाने में अलीगढ़ में पाँच बरस में पन्द्रह हजार रुपये फूँक दिये हों आज चालीस रुपये पर स्कूल की मास्टरी करता है और इसी चालीस में अपना और अपनी बीबी का इलाज और अपने बच्चों की पढ़ाई का इन्तजाम करता है, उन्हें कोई खास आराम नहीं पहुँचा पाता, मुझे अपने ऊपर बड़ी शर्मिन्दगी मालूम पड़ती है, रतन बाबू!...आप कुछ मत कहिए, मैं इस बात को जानता हूं कि मेरी जिन्दगी बेकार—

मैंने जोर के साथ कहा—नहीं आप यह नहीं कह सकते, अजीज मास्टर। मैं आपको ऐसी गलत बात न कहने दूँगा।

अजीज मास्टर ने मुसकराते हुए कहा—रतन बाबू, जो सच है, उसे कहने की ताकत इन्सान में होनी चाहिए। मुझमें वह ताकत है। मेरी बीबी और बच्चों के थके और कुम्हलाये हुए चेहरे पुकार-पुकारकर यह कहते हैं कि अजीज मियाँ तुम्हारी जिन्दगी नाकामयाब रही—।

मैं—इसके लिए आपको शर्मिन्दा होने की जरूरत नहीं है। दुनिया की बेहतरीन जिन्दगियाँ बरबाद हो रही हैं। इसके लिए उन्हें शर्मिन्दा होने की जरूरत नहीं है। इसकी लानत है भूख और गरीबी के उन सौदागरों पर जिन्होंने दुनिया को नरक बना दिया है, उन्हीं पर जिनकी जंजीरों की कड़ियाँ हमारी माँ के शरीर को लहूलुहान कर रही हैं।

अजीज मास्टर—शायद आप ठीक कहते हैं रतनबाबू, मगर यह दलील देकर अगर मैं अपनी जिम्मेदारियों से बचना चाहूँ, तो यह भी तो गलत होगा !......यही खयाल मुझे अक्सर उदास बना दिया करता है। मगर अपनी इस उदासी में भी मुझे एक शान्ति मिलती है, यह सोचकर कि मैं सिर्फ चालिस रुपये ही नहीं कमाता, मुल्क की आजादी के सिपाहियों की एक फौज भी तैयार कर रहा हूँ जो हिन्दू और मुसलमान नहीं बल्कि दोनों की एक मिली-जुली धारा होगी हिन्दुस्तानी—जो हमारी गुलामी की जड़ हुई को बीसों फुट नीचे दफन कर चुकी होगी। कभी-कभी मुझे बड़ा तरस आता है अपने उन साथियों पर जो भेद-भाव का जहर फैलाकर मुल्क के साथ गद्दारी करते हैं ; क्योंकि मैं समझता हूँ कि अपने काम से अगर मुझे शान्ति मिलती है, तो उन्हें अपने काम से जरूर कभी-न-कभी तकलीफ पहुचती होगी। सच कहता हूँ कि मुझे कभी-कभी बड़ी खीझ मालूम होती है कि लोग इतनी आसान-सी बात क्यों नहीं समझते कि एत्तेहाद के बगैर आजादी नामुमकिन है। मैं तो कभी-कभी जगते में ही ख्वाब देखने लगता हूँ कि दोनों भाई एक हो गये हैं और अपने खून से लिख रहे हैं कि अब हम इस जिल्लत और जूते खाने की जिन्दगी का खातमा करेंगे, नहीं यही करते-करते खुद खत्म हो जायँगे। खुशी के मारे मेरा रोयाँ-रोयाँ नाच उठता है।...लेकिन तभी मेरी नींद जैसे टूट-सी जाती है और मैं अपने को स्कूल की दम घोंटनेवाली फिजा में पाता हूँ।......मुझे अपने साथियों की हरकतों पर इतना दुःख न हो, अगर मैं यह न देखूँ कि वह अपनी बातों से आजादी के दिन को कितनी दूर ढकेले दे रहे हैं—कितनीऽऽऽ दूर। मेरा तो सर घूमने लगता है।

जबलपुर स्टेशन के यार्ड में गाड़ी पहुँचकर धीमी हो चली थी। मैंने ऊपर के बर्थ से नीचे उतरते हुए कहा—बात तो ऐसी है, पर आप तो अपना फर्ज अदा करने में कोई कोताही नहीं कर रहे हैं।

मैंने देखा कि अजीज मास्टर का सर ऊँचा हो गया। उनके चेहरे

पर एक बड़ी प्यारी मुसकराहट खेलने लगी और उनकी आँखों में एक असाधारण चमक आ गयी। उन्होंने कहा—यही खुशी तो है जो मुझे जिन्दा रखे है। मैं भी मुल्क की आजादी का एक अदना-सा सिपाही हूँ। इसीलिए मुझे अब अपनी जिन्दगी भारी नहीं मालूम पड़ती; नहीं पहले मुझ पर हर वक्त खुदकुशी का ही भूत सवार रहता था, मैं जिन्दगी से बेहद मायूस हो गया था। अब वह बात नहीं है। स्कूल मास्टर की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है, लेकिन तो भी मैं खुश हूँ। सिर्फ चालिस रुपये पाता हूं, बीवी बीमार रहती है, बच्चों के चेहरे जर्द और कुम्हलाये हुए रहते हैं, मगर उस पर भी मैं खुश हूं। इसीलिए कि मैं भी मुल्क की खिदमत कर रहा हूं, बच्चों के दिमाग से सदियों की जमी हुई हुई की काई खुरचकर निकाल रहा हूं, उन्हे आजाद हिन्दुस्तान के काबिल बना रहा हूं,, उन्हें इस काबिल बना रहा हूं कि वह अपनी तमाम ताकत इकजा करके उस मरदूद को समुंदर में ढकेल दें जो सदियों से मादरेहिन्द की छाती पर चढ़ा बैठा है।

फिर कुछ रुककर कहा—जी हाँ, जिन्दा हूँ तो उसी दिन की आस में नहीं तो म्युनिसिपल स्कूल के एक मास्टर को जिसे चालिस रुपये मिलते हों, जिन्दा रहने का हक चाहे हो, मगर जरूरत हरगिज नहीं है।

एक पल को उनके मुंह पर कुहासा-सा छा गया; लेकिन इसके पहले कि मैं उन्हें जवाब दूँ कुहासा साफ हो गया था और धूप निकल आयी थी। अजीज मास्टर हँसते हुए कह रहे थे मेरी खुशकिस्मती थी जो आपसे मुलाकात हुई। सफर मालूम ही न हुआ। अब देखें कब मुलाकात होती है।

[हंस, जनवरी '४५]

खाद के लिये

सीतलाप्रसाद का बैठका। सबेरे के सात बजे हैं। बैठके का मुँह उत्तर को है इसलिए सूरज का उगना उस पर कोई असर नहीं रखता। यही वजह है कि सीतलाप्रसाद के मुँह में अब तक पानी नहीं गया है। हाँ, हुक्के की निगाली जरूर कई बार जा चुकी है, लेकिन उसकी और बात है। ...बैठके में एक खाट और एक तख्ता पड़ा हुआ है। खाट सुतली से बिनी है और तेल लग लगकर काली और मजबूत हो गयी है। इसी खाट पर सीतलाप्रसाद लेटे हुए हैं। चालिस के पार उनकी उम्र होगी, पैंतालिस और पचास के बीच। शरीर के खँडहर बता रहे हैं कि इमारत बुलंद थी। तख्त पर एक साँवला साँवला-सा लड़का बैठा हुआ है जिसकी अभी मसें भींग रही हैं। यह सीतलाप्रसाद का साला है और सब इसे सालार-जंग कहकर चिढ़ाते हैं, लेकिन अब यह मजाक इतना पुराना पड़ गया है कि अब इस में न कहनेवाले को रस मिलता है और न सुनने-वाले को, लेकिन यों ही आदत के कारण यह बाण जब तब छूट जाया करता है। कुछ जब बात करने को नहीं होता तो यह मज़ाक थोड़ी देर को काम दे जाता है। इस वक्त सालारजंग की हजामत शकूर बना रहा है। वहीं तख्त पर सीतलाप्रसाद के छोटे भाई महाबीरप्रसाद बैठे हुए हैं। तख्त के नीचे काफी-सा, कटा हुआ चारा और एक गँड़ासा रखा हुआ है।

सीतलाप्रसाद चार भाई हैं। उनसे छोटे तीन हैं, महाबीरप्रसाद, दुर्गा-प्रसाद और किसुन प्रसाद। सीतलाप्रसाद आजकल शहर में काम करते हैं,

एक सेठ के यहाँ मुनीम हैं। पहले वह पास के गाँव के डाकखाने के बाबू थे, पर नीयत कुछ डाँवाडोल हो गयी और उन्हें करीब डेढ़ साल के लिए गबन के जुर्म में जेल की हवा खानी पड़ी। तबसे उन्होंने गाँव में लोगों से मिलना-जुलना बंद कर दिया है, बस अपने बैठके में पड़े रहते हैं। बोलते भी अब बहुत कम हैं।

महावीरप्रसाद पहले मोटर ड्राइवरी करते थे, आजकल लोहता के अमूनिशन डिपो में काम करते हैं।

किसुनप्रसाद पहले पूरा वक्त गुल्ली-गबाड़ी और ताश गंजीफे में ही काट दिया करते थे, लेकिन शादी ने उनको गंभीर बना दिया और तब सत्ताइस-अट्ठाइस की उमर में उन्होंने बिजली का काम सीखा और अब डालमियाँनगर में काम करते हैं। आजकल महीने भर की छुट्टी पर घर आये हैं।

दुर्गाप्रसाद किसी चीज की दलाली करते हैं।

गरज यह कि अब सभी लोग खातेपीते अच्छे हैं। यह खानदान इस बात के लिए मशहूर है कि इसमें सभी बहुत बग्गड़ हैं, इनके मुंह लगकर कभी किसी को फायदा नहीं हुआ, खुदा बचावे इनसे, तुरंत ही तो ये लोग लाठी-गोजी लेकर निकल आते हैं। इन लोगों की गांव में काफी हवा बँधी हुई है। लाठी वगैरः के दो-चार हाथ ये लोग जानते हैं, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन इनकी जितनी हवा बँधी है उसमें हवा ही ज्यादा है। महावीर जरूर मार करने में तेज है। किसी वक्त उसका शरीर बहुत अच्छा रहा होगा। अभी भी काफी बना हुआ है यानी जितना कि आज-कल के जमाने में मुमकिन है। और महावीर का शरीर चाहे थोड़ा बहुत टूट भी गया हो, लेकिन उसका कलेजा अब भी वैसा ही कड़ेदम है। गम खाना तो उसने सीखा नहीं—नहीं यह कहना तो गलत है, जिन्दगी की मजबूरियों ने थोड़ा बहुत गम खाना तो सिखा दिया है!

शहर के पास ही मेरा गाँव है। बीच बीच में दिल बहलाने के लिए हो आता हूं। इसलिए बावजूद इस बात के कि अब न वह पुराना गाँव

हार और न वह पुराना मैं, अब भी मेरा थोड़ा-बहुत ताल्लुक उससे बना हुआ है।

सनीचर की रात को गया था। इतवार को सुबह सोचा, चलो सबसे मिलता आऊँ। सभी घर पर मिल जायेंगे।

मुझे देखते ही सीतलाप्रसाद ने पूछा—कब आये ?

कल रात।

अच्छे तो रहे ?

सब तुम्हारी दया है भैया—

कैसे चले आये ?

क्या मतलब ? कोई अपना गाँव-घर छोड़ देता है ?

छोड़ने में अभी भी कोई कसर है ?

हाँ, सो तो ठीक कहते हो भैया एक तरह से, मगर क्या करूँ, मरने तक की फुर्सत तो मिलती नहीं।

अरे छोड़ो भी यह गपोड़ियेपन की बात ! झूठ-मूठ बतियाते हो।

थोड़ी देर को खामोशी छा गयी।

सीतला भैया की खाट पर ही पास के एक गोशाले की सालाना रिपोर्ट पड़ी हुई थी। मैं उसको उठाकर उलटने-पलटने लगा। उसके दानदाताओं की फेहरिस्त में शहर के सब बड़े-बड़े चोर व्यापारी थे, कोई एक चीज का ब्लैक करता है तो कोई दूसरी चीज का। कुछ को तो मैं भी जानता था।

मैंने कहा—भैया, कौन लेता है जीव-दया विस्तारिणी का चंदा ? मैं भी उसमें चंदा देना चाहता हूँ।

गऊ माता की सेवा का भाव कबसे उमड़ आया ?

कैसे न उमड़े भैया ? गऊ माता के बिना वैतरणी कैसे पार होगी ? अभी से कुछ पुन्न कमाये रहूँगा तो मरने पर—हाँ भैया, अच्छी न सही, कोई सड़ी-गली गाय मिल ही जायगी पूँछ पकड़ने को। लेकिन भाग्य का हूँ मैं जबर्दस्त खोटा—कहीं पूँछ ही उखड़कर मेरे हाथ में न आ जाय !

फिर सीतलाप्रसाद मंत्री का नाम खोजने लगे।

मैंने कहा—शहर का कोई डाकू ऐसा है जिसका नाम यहाँ न हो !

अब तक खामोश बैठे हुए महाबीर ने कहा—नहीं, एक नहीं । सबने दिया है ।

फिर मैंने नाम पढ़ा—मिसरी लाल टनटनिया १००१)

महाबीर ने कहा—किस नसुड्ढे का नाम लिया चुन्नी ! अब दिन भर तुमको खाने को मिल जाय तो मूँछें मुड़ा डालूँ ।

ऐसा प्रतापी है ?

हाँ, ऐसा ही प्रतापी है । शहर भर के लिए आँटा पीसता है सरकार की तरफ से । न जाने कै मन कंकड़ मिलाकर पसता है, रोटी किसकिसाती है । चार दिन लगातार खायी थी, आँव गिरने लगी । डरके छोड़ दी । अब मैं तो भात पर ही काट देता हूँ । उसकी मील का आँटा खाकर कौन जी साँसत में डाले । लोगों को आँव गिरती है, और उसके लाखों खड़े हो जाते हैं ।

कितना दयालु है बेचारा । गैयों पर कितनी दया दृष्टि रखता है !

दया नहीं भैया, परासचित करता है । गरीबों की आह न लगे इसी मारे गऊशाला में मोटी मोटी रकम देता है ।

मैंने दूसरा नाम पढ़ा—रामकिशोर गुप्त १००१)

महाबीर ने अपनी टिप्पणी दी यह न देंगे तो कौन देगा ।

गुप्तजी की मील है शहर में, कपड़े की । चार हजार मजदूर काम करते हैं, हमेशा कलपते रहते हैं । कभी पेट भरने को रोटी नहीं जुरती और न तन ढँकने को कपड़ा ।

जो कपड़ा बनाते हैं उन्हीं को कपड़ा नहीं मिलता ऐसा अंधेर कहीं देखा है ?—महाबीर ने कहा ।

मैंने तीसरा नाम पढ़ा—रामरतन जेठिया ।

इनके तो सात पुरखों को जानता हूँ मैं ।—महाबीर ने कहा ।

दुर्गाप्रसाद जो बड़े मनोयोग से अपनी सायकिल ठीक कर रहे थे और बातचीत से अपने को बिल्कुल अलग रक्खे हुए थे, अब उनसे न

रहा गया। बोले—चार-पाँच सौ के गच्चे में गया साला। कई लोगों ने एक साथ पूछा·कौन ?

अरे वही चोलापुर का महराजदिनवा। बड़ा हरामीपन करता था साला। एक ही बार में सब अकड़ ढीली हो गया।

लोगों को बड़ी उत्सुकता हुई कि इस वारदात को सुनें। महराजदीन कपड़े का कारबारी है, सब उसकी बदमाशियों से तंग आ चुके हैं। एक तो कभी सीधे मुँह बात न करेगा और दूसरे माल आयेगा तो कभी खुले बाजार न बेचेगा, जब बेचेगा तब ब्लैक। किसी की कैसी भी जरूरत हो, शादी हो, गौना हो, तिलक हो, बरिच्छा हो, मौत हो, बीमारी हो, उसके बाप के ठेंगे से।

दुर्गा ने बतलाना शुरू किया—मैं भी जिद पकड़ गया। अब देखो न साले की बदमाशी। एक रोज हम तीन चार जन गये उसके पास और बोले कि भैया एक-एक जोड़ा धोती दे दो। धोती बिना काम अटक रहा है। साले ने अकड़कर जवाब दिया -- धोती बोती नहीं है। अच्छा, यह हम जानते थे कि साले के पास अभी चौबीस घंटा भी नहीं हुआ माल आया है। और माल किसी के हाथ बिका नहीं, यह भी हमने देखा था। तो कहाँ गया सारा माल ? धरती लील गयी ? कि दीवार में पैवस्त हो गया ? हमने अपने दिल में कहा—साले तेरी दुर्गत न बनायी तो असल कायस्थ के बच्चे नहीं दोगले। चेतावनी दे दी—तो जरा सँभालकर काम करना महराजदीन।

'हमको यह भी मालूम था कि टकटकपुर का एक ठाकुर उसका बड़ा यार है और जब नया माल आता है तो सबसे अच्छे धोती जोड़े उसी के यहाँ पहुँच जाते हैं। महराजदीन ब्लैक करता है उसके साथ। टकटकपुर के ही एक आदमी से हमको मालूम हो गया कि ठाकुर साहब आज कपड़ा लेने पहुँचेंगे। बस फिर क्या था, हम लोग वहीं रास्ते में एक जगह छुप-कर बैठ गये। एक एक पतला पतला बाँस का पैना हाथ में ले लिया, क्या जाने इसकी भी जरूरत पड़े।

'बस साहब जब वह अँधेरा गहरा हो जाने पर सायकिल के केरियर

में कपड़ा बाँधकर लिये उधर से निकला तो हमने हमला बोल दिया। जाकर सीधे उसकी सायकिल पकड़ी। पहले तो जरा बमका—हम छत्री की औलाद हैं—

'जहाँ उसने कहा, हम छत्री की औलाद हैं, मैंने एक रहपट तानकर दिया और डपटकर कहा—बोल बे छत्री की औलाद! कर ले जो कुछ तुझसे बन पड़े। है हौसला? और बायें हाथ से दाहिने गाल पर एक रह-पट और दिया।

बोल कहाँ से लाया यह कपड़ा?

चुप।

बोलता है कि और लात खाने पर तुला है!

चुप।

एक रहपट।

चार आदमी के आगे बेचारे की क्या चलती। आखिर को उसने कहा—

अरे उसी परसोतमा के यहाँ से लेकर तो आ रहा हूँ। उसके यहाँ मेरा रक्खा था बहुत दिन का।

अच्छा, अब यह ठकुरे का बच्चा हमसे चकमेबाजी करता है!

एक रहपट।

सच सच बता दो नहीं आज तुम्हारी जान की खैरियत नहीं!

नाम नहीं बताऊँगा। काला-काला है। बड़ी-बड़ी मोंछ है।

हूँ, तो साले पहले क्यों नहीं कहा! कि मजा आता है लात खाने में!

वही महराजदिनवा तो है। पकड़कर ले गये ठाकुर साहब को हवा-लात। वहाँ से लिया छोटे दारोगा को। पहुँचे महराजदीन के यहाँ। बनिये का बच्चा, दारोगा को देखा तो साले की धोती ढीली हो गयी।...नच्चू चार पाँच सौ के पेटे में गये। दारोगा को देना पड़ा, कानिस्टिबलों को देना पड़ा।...

मैंने पूछा—तो फिर आपको मिली धोती!

नहीं हमको कहाँ मिली। लेकिन उसको हाले को तो चपत पड़ गयी...यों दारोगाजी ने मुझको देने कहा है। अब देखें कब तक देते हैं।

दुर्गा भैया फिर अपनी सायकिल बनाने में जुट गये। उनके चेहरे के भाव से स्पष्ट था कि वह अपने को एक छोटा मोटा हारूँ रशीद या प्रजा-वत्सल राजा विक्रमादित्य समझ रहे थे! गोया टकटकपुर के ठाकुर को अकेले में चार रहपट मारकर और महुआजदीन से छोटे दारोगा और उनके हवालियों मवालियों को चार सौ रुपया घूँस दिलवाकर उन्होंने ब्लैक बन्द करवा दिया हो।

मक्खियाँ बहुत भिनक रही थीं सीतला के छोटे लड़के के मुँह पर।

मैंने कहा—मक्खियाँ बहुत हैं अबकी।

महावीर ने कहा—मक्खियों का एक जहाज आया है। उसी पर लद-कर आयी हैं सब। मेरे हमउम्र नौजवान मुल्लू ने कहा—मक्खी तो हैं लेकिन मच्छर नहीं हैं।

मैंने कहा—मच्छर का तमाशा देखना हो तो हमारे घर चलो शहर।

किसुनप्रसाद ने जो इस बीच घर के भीतर से बाहर आ गये थे, कहा—गया जैसे मच्छर कहीं न होंगे।

मैंने अपनी हेटी होते देख कहा—हमारे यहाँ भी उसी जात के हैं।

किसुनप्रसाद ने अँगूठे और तर्जनी को एक दूसरे से अलग करके गया' के मच्छरों का कुछ अन्दाज देना चाहा।

मैंने कहा—हमारे यहाँ भी ठीक उतने ही बड़े हैं। बोलते जरा नहीं।

किसुन ने तसदीक की—हाँ बोलते जरा नहीं...लेकिन जहाँ काट लेते हैं वहाँ कई दिन तक जलता रहता है। और किसुनप्रसाद ने फिर अपने बायें हाथ के अँगूठे और तर्जनी की मदद से मुझे बतलाया कि इतने बड़े बड़े दिदोरे पड़ जाते हैं।

अबकी मेरी तसदीक करने की बारी थी—अरे भैया कुछ न पूछो।

तभी सीतलाप्रसाद के पट्टीदार सरजू प्रसाद अपने घर की तरफ से आते दिखायी दिये। सरजूप्रसाद चचेरे भाई हैं। वकालत पास की है।

लेकिन अब तक वकालत कभी की नहीं। यही पहला साल है जब वह वकालत के दाँव-पेंच को समझने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन कुछ समझने का मौका जरा कम आता है क्योंकि कोई विस्मिल्लाह करने को तैयार नहीं होता, कोई बेधा है जो एक नौसिखुए के पास जाकर कहे—भैया रे भैया, तू मुझ पर अपनी आजमाइश कर। नतीजा इसका यह होता है कि बेचारे के दिन टाले जाते हैं। सुनते हैं अपनी सुरती का पैसा भी वे घर से ही लगाते हैं। उतना भी नहीं निकलता इस सूरतहराम पेशे में। सुरती बहुत खाते हैं सरजू। वक्त काटने का अच्छा बसाला है यह, पूरे वक्त खैनी ही खाया करते हैं। इसी लिए मुवक्किलों में (अपने नहीं, दूसरों के) जाकर बैठते हैं और हर जंट मजिस्ट्रेट के इजलास के किस्से सुनाते हैं और खैनी मलकर तैयार होने पर हाथ बढ़ाते हुए कुछ कहते हैं—'बड़ा खूसट अफसर है यह' या 'देखो अगली पेशी तुम्हारी कब की पड़ती है' या 'मुकदमा बड़ी सत्यानाशी चीज है; जो इसके फेर में पड़ा बरबाद हुआ।' यह आखीरी बात तो शायद अपने ऊपर उनकी टीका है। बहरसूरत जिन्दगी वाकयी बरबाद है सरजू की। एक तो पैसा नहीं मिलता और बहुत सी जरूरतें पूरी नहीं हो पातीं। (सरजू बाल-बच्चेदार आदमी भी तो हैं) इसके अलावा गाँव-पुर में इज्जत नहीं होती, मान नहीं मिलता। जिन्दगी से तबियत खट्टी हो गयी है सरजू की। पर तो भी जिन्दगी है तो उसे निबाहना भी है। चुनांचे सरजू दार्शनिक बन गये हैं और दुनिया की हर चीज को अपरिग्रह की दार्शनिक दृष्टि से देखते हैं। इससे उनकी तबीयत को काफी राहत नसीब होती है इसलिए कहना चाहिए कि अपरिग्रह बुरी चीज नहीं है। सरजू गांधीजी के बड़े भक्त हैं, लेकिन उनकी इस भक्ति की भी कोई पूछ नहीं है—'आदमी बड़ा होता है तो उसके खाँसने-खखारने में भी लोग मसलहत ढूँढ़ते हैं, नहीं तो...' इसके आगे सरजू कुछ नहीं कहते लेकिन जो वह कहना चाहते हैं, साफ है 'इधर से उधर चौबीस घंटा टक्कर मारो, कोई बुलाकर बिठाता भी नहीं चार मिनट के लिए कि जरा हँस-बोल तो ले इंसान।'

हाँ, यह बात सही है। सरजू को जो बुलाता है, बस चिढ़ाने के लिए। तरह-तरह के नाम उनको दे दिये गये हैं जो सब उनका वही घाव दुखाते हैं। लेकिन अब घाव भी नहीं दुखता। आप उनको 'मक्खीमार' कहिए, वह उसे न सुनने का भाव अख्तियार करते हुए कोई और बात छेड़ देंगे।

आजकल सरजू की शेरवानी का शहर में बड़ा चर्चा है। कोई छ साल बाद जब उन्होंने अपनी काली शेरवानी अपने जिस्म से अलग की और यह नयी चारखाने की जंग के जमाने की शेरवानी पहनी तो लोगों को ऐसा मालूम हुआ जैसे उनकी पुरानी खाल अपने आप उतरकर उसकी जगह नयी खाल आ गयी हो। चुनांचे चारों तरफ खुशियाँ मनायी गयीं।

हाँ तो किस्सा तो रह ही गया। सरजू बिलबिल-बिलिल लिये उधर से गुजरे तो महावीर ने उनको घेरा—आज इतवार को भी?

सरजू ने बहुत सादगी से कहा—अलईपुर जा रहा हूँ। एक मुकदमे में सलाह लेनी है। पर महावीर इतनी आसानी से छोड़नेवाला थोड़े ही था। बोला—आज ये आये हैं, अब इनसे बात करो। हम लोगों से तो बड़ा कानून छाँटते हो। तुम कहते न थे कि स्वराज मिल गया। अब बताओ, क्या मिला हमें।

कुछ न कुछ तो मिल ही गया। दबकर दे दिया अँग्रेजों ने।

वही तो, बताओ, दबकर क्या दे दिया अँग्रेजों ने।

सरजू ने मेरी ओर इशारा करके कहा—इन्हीं से पूछो।

महावीर ने कहा—तुम बताओ तो यह भी बोलें। यह तो कहते हैं कि स्वराज-वराज की बातें धोखे-धड़ी की हैं। तुम्हीं कहते थे कि यह आजादी मिल गयी, वह आजादी मिल गयी।

सरजू ने अपनी शेरवानी के दोनों पल्लों को खींच खींचकर बराबर करने की कोशिश करते हुए कहा—आज की हालत से तो अच्छी ही हालत रहेगी हमारी।

शिवनाथ मास्टर उधर से निकले। सलाम-बन्दगी हुई मुझसे। रुक-

गये। सरजू की बात का आखिरी हिस्सा उन्होंने सुन लिया था, बोले—काहे बात की बहस छिड़ी है?

मैंने कहा—स्वराज मिला कि नहीं मिला।

उन्होंने कहा—अच्छा, यह बात भी बहस से तय होगी? स्वराज मिलेगा और लोगों को मालूम न होगा!

मैंने कहा—सरजू तो कहते हैं, स्वराज मिल गया।

शिवनाथ ने सरजू का मखौल उड़ाते हुए कहा—इनकी बात न करो। ये एक से एक चंडूखाने की उड़ाते हैं। हमें तीन पसेरी का अनाज मिलने लगे और पैसा लेकर जायँ तो जब चाहें एक गज मार्किन मिल जाय, अभी इतना हो जाय, तो बहुत है, स्वराज तो दूर की बात है।

और आगे बढ़ गये।

सरजू ने अपने को बुरी तरह घिरा हुआ पाया तो व्यस्तता का अभिनय करते हुए और शेरवानी बिला वजह तानते हुए बोले—छोड़ो, चलने दो, नहीं देर हो जायगी। वकील किसी से मिलने-जुलने निकल जायगा। एक यही तो दिन मिलता है। आज ही के दिन तो सबसे मिलना-जुलना होता है।

सरजू चलने लगे तो महावीर ने बोली कसी—लगे रहो पट्ठे, कोई न कोई मछली फँसेगी ही। लेकिन यार, बात तो तब है जब पाँच-दस सेर की रोहू फाँसो।...लेकिन इधर के पानी में इतनी बड़ी रोहू मिलती नहीं। यहाँ तो बस वही गिरई मिलती है।

सरजू आगे बढ़े। मैंने कहा—यार, खसी (बकरा) कटाओ स्वराज की खुशी में। कैसे मूजी हो। साल-भर से वकालत करते हो, कभी हमने तुम्हारा एक पैसा न जाना। आज के रोज तो कलेजा खोल दो, स्वराज को भी यों ही डकारकर बैठ जाना चाहते हो क्या!

महावीर ने कहा—स्व—राज! एक सूई की नोक बराबर जमीन के लिए महाभारत हुआ था। सरजू के ससुर ही तो हैं ये सब साले अँग्रेजवे, जो यों ही सब छोड़-छाड़कर चले जायँगे और कहेंगे—लो भैया, अब

हम चले, अब तुम अपना घर सँभालो। ये अपने बाप के सगे तो हैं ही नहीं, तुम्हारे सगे होंगे।...भैया, जमीन प्यासी है।

पंचम ने हुक्के पर से चिलम उठाते हुए कहा—महाबीर, समंतपंचक-वाला किस्सा तुमने नहीं सुना है। जरूर सुना होगा। महाभारत में ही तो है। परसरामजी ने इक्कीस बार पृथ्वी पर से छत्रियों का नाम मिटाया था और पाँच तालाब खोदवाकर उनके खून से भर दिया था। उसी खून से परसरामजी ने अपने पितरों का तर्पण किया था।...

मैंने शंका की—छत्रियों का खून बहाने से हमको क्या मिलेगा ?

पंचम ने समाधान किया—यहाँ छत्री से मेरा मतलब छावनी पर वाले बाबू साहब से नहीं है। छत्री माने राजा। जो राज करे वह छत्री। यह बाबू साहब छत्री थोड़े हो हैं, ये भी तो हमारी-तुम्हारी तरह गुलाम हैं। राज तो कोई और करता है। छत्री तो कोई और है।

महाबीर ने कहा—बड़ी सरेखों (विद्वानों) जैसी बात कर रहे हो पंचम !

पंचम ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। फिर अपनी पिछली बात के रौ में ही धीरे-धीरे कहा—हमारे पितर भी भूखे-प्यासे बैठे होंगे महाबीर, कि झूठ कहता हूँ ?

महाबीर ने कहा—नहीं पंचम, झूठ कैसा। मैं भी तो वही कह रहा हूँ—जमीन प्यासी है। ऐसे फल न देगी वह। सरजू लाल बकैं।

फिर सालारजंग के बाल काटते हुए शकूर को संबोधित करते हुए उसने कहा—तुम्हें भी अपना उस्तरा ठीक रखना होगा शकूर।

शकूर ने थोड़ा बिगड़कर कहा—हमसे कोई अदावत है तुम्हारी महा-बीर, जो नाहक मेरी खिल्ली उड़ा रहे हो !...मेरे पास बल्लम है, बल्लम ! जैसे तुमने देखा ही न हो।...

महाबीर ने चारे के पास ही पड़े हुए गँड़ासे को उठाकर वहीं पत्थर पर रगड़ते-रगड़ते और उँगली से उसकी धार मालूम करते हुए आँखों में शरारत भरकर बहुत हल्की मुस्कराहट के साथ कहा—गँड़ासे से भी अकेले चारा ही नहीं कटता शकूर !

[हंस, जुलाई'४६]

मसानघाट

मैंने आँखें ऊपर उठायीं तो देखा किशन सामने खड़ा है। किशन मेरे एक बहुत करीबी दोस्त का छोटा भाई है। नौ-दस साल का होगा। उसकी आँखें डबडबायी हुई थीं और गला भरा हुआ। कुछ रुँधी आवाज में ही उसने मुझे पुकारा था—भैया!

किशन! क्या है बेटा?

किशन ने धीरे से कुछ कहा जो मुझे सुन नहीं पड़ा। मैंने उठकर उसका सिर अपनी गोद में लेते हुए चुमकारकर पूछा—क्यों, क्या हुआ भैया? तुम रो क्यों रहे हो?

किशन की आँखें मेरी आँखों का सहारा पाकर और भी भर आयीं। पर इस बार उसका स्वर थोड़ा ऊँचा था—भैया ने आपको बुलावा है। कहा है, साइकिल से ही चले आवें।

बात मेरी समझ में ज़्यादा आयी नहीं, गप्पू ने मुझे क्यों बुलाया है। तभी किशन ने कहा—वह नहीं रही, छोटी बच्ची......

मुझे धक्का-सा लगा, पूछा—कब?

किशन ने कहा—आप देखकर आये थे उसके करीब पौन घण्टा बाद...लोग आगे निकल गये हैं और...

अब किशन को अपना सन्देशा दोहराने की जरूरत नहीं थी। गप्पू की लड़की जिसे जमुआ हो गया था और जिसे मैं अभी एक घण्टा पहले देखकर आया था, अब नहीं थी......लोग आगे निकल गये थे और...

आगे आगे गप्पू था, हाथ में अपनी सात दिन की बच्ची की नन्हीं-सी लाश लिये (गाँव के रिश्तेवाले चचा थक गये थे बच्ची के वजन से), सफेद कफन में लिपटी हुई, और पीछे-पीछे गप्पू के दो छोटे भाई और मैं। गाँववाले चचा का जिक्र तो पहले ही आ चुका है। हाँ, गनेशी भैया को हम लोगों ने रास्ते में ले लिया। इतनी हलकी-फुलकी जान को अपने आखिरी सफर के लिए इससे ज्यादा मददगारों की जरूरत भी नहीं थी।

चलते-चलते तपती हुई डामर की सड़कों के बाद पैर के तलुवों को सूरज का मुँह न देखनेवाली गलियों की ठण्डक मिली जो तमाम जिन्दगी की तपिश के बाद वक्त पर आयी हुई मौत की ठण्डक-सी जान पड़ी।

और हम लोग मसानघाट से लगे हुए फौती दफ्तर में पहुँचे जहाँ मौत का बहीखाता रखा जाता है।

'फौती लिखाने के लिए कुछ देना नहीं पड़ता'—यह तख्ती पढ़कर हमें बहुत भरोसा हुआ।

लगभग पाँच-सात मिनट बाद फौती बाबू हमारी ओर मुखातिब हुए और हम लोगों से सवालों की झड़ी शुरू हुई...नाम...वल्दियत...उम्र... सकूनत...कब फौत हुई...बीमारी...सवाल और और सवाल...

फारम भरा जाने लगा। गप्पू वाला फारम भर चुकने पर वह मेरी तरफ मुखातिब हुआ। मैंने जब उसे यह बताया कि मैं भी उसी बच्ची की लाश के साथ हूँ तो उसे बहुत हल्की-सी मायूसी हुई। वह बार-बार बड़ी हठ के साथ पूछ रहा था—और मुझे काफी कुछ देर लगी उसे इस बात का इतमीनान दिलाते कि मैं छुपाकर कोई लाश नहीं लिये जा रहा हूँ। मेरी निगाह अब उस दफ्ती पर जमी हुई थी जिस पर काली स्याही और सरकण्डे की कलम से लिखा हुआ था—

'मौत के तीन दिन के अन्दर फौती न लिखानेवाले का चालान होगा।'

इसी के ठीक ऊपर वह दूसरी तख्ती थी—

'फौती लिखाने के लिए कुछ देना नहीं पड़ता'...

...फोकट का कारबार है, पैसा बिलकुल नहीं लगता है, हड़ लगे न फिटकिरी...

इसी लिए तो बाबू भी खूब बेधड़क होकर बार-बार हमसे सवाल कर रहा था। लाशों का बीजक रखते रखते उसका धड़का खुल गया है। अब उसके नजदीक इन्सान की मौत और बिल्ली की मौत लगभग एक ही चीज है। रात को उसे अब सपने भी नहीं आते, आते भी हैं तो फुलवारियों के।

फौती दफ्तर से लगी हुई जो दूकान है, जिस पर मसानघाट की जरूरत की तमाम चीजें मिलती हैं, उस पर जो गोरा-चिट्टा, छरहरा आदमी बैठा हुआ है, वह भी काफी दिलेर है—

आप ले भी तो जाइए यह गगरी...कितने दिन का था बच्चा, सात दिन का?...उसके लिए बहुत काफी है यह गगरी.....हाँ-हाँ, रस्सी भी है, कितनी दूँ, लीजिए, इतनी दिये देता हूँ...कुल चौदह आने हुए...जी हाँ, चौदह आने...घबराइए नहीं, गगरी छोटी नहीं पड़ेगी...

...और सचमुच गगरी छोटी नहीं पड़ी। उसमें बालू भरकर उसके सहारे जब उस नन्हीं-सी लाश को गंगा मैया की लहरों के सिपुर्द किया गया तो वह फौरन डूब गयी।

जब नहा-धोकर गीले कपड़े पहने लोग अपने-अपने घर चलने लगे, तब सबको अपना जी बहुत हलका लगा। गाँववाले चचा तो थोड़ा-सा मुस्कराये भी।

बोले—सब खेल-तमाशा खत्म हो गया गप्पू?

गप्पू ने साधारण ढंग से कहा—हाँ।

चचा बोले—अच्छा हुआ कि सात ही दिन में जो जहाँ से आया था वहीं चला गया, नहीं तो—

गनेशी भैया ने सहारा दिया—अनौनी-पठौनी सभी तो लगी रहती है।

मैंने न समझते हुए पूछा—क्या?

गनेशी भैया बोले—अरे, यही, लाना, ले जाना, बार-बार का झंझट...

चचा बोले—और शादी में रकम भी तो लगती है...

चचा की इस बात का किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन सबको यही बड़ा ताज्जुब हुआ कि गप्पू की वह लड़की सात दिन में ही इतनी समझदार कैसे हो गयी !

[नया हिन्द, सितंबर'४६]

गहरी नींद में था शायद। चौंककर आँख खोली। सिरहाने बहन खड़ी थी। बहन ने कहा—महराजिन के बच्चा हो गया। अठवाँसा या सतवाँसा है। मैंने थोड़े अचरज के साथ कहा—अच्छा! बहन ने कहा—हाँ! अभी मैं अधसोयी ही थी कि मेरे कान में किसी छोटे से बच्चे के रोने की आवाज पड़ी। मैं बड़े सोच में पड़ गयी कि यह आवाज आखिर कहाँ से आ रही है। तभी कोई कराहा। मैं उठकर सतवती के पास गयी। पूछा। उसने कराहते-कराहते कहा—का बताई, लड़िका हो गयल......

थोड़ी देर की खामोशी के बाद बहन ने कहा—मैं बड़ी परीशान हूँ, अब क्या हो! एकदम नया मुहल्ला है, किसी को जानती नहीं, पहचानती नहीं, किसके पास आदमी भेजूँ?

मैंने कहा—बड़ी तकलीफ में होगी बेचारी!

तभी एक दर्द-भरी पैनी चीख सुनायी दी।

बहन ने कहा—बैठी है।

मैंने सोचा—तुरंत कुछ होना चाहिए ऐसी हालत में।

कहा—शशिप्रभा भी तो नहीं है......

बहन ने कहा—मैं तो रामू को इन्हीं सामनेवाले डाक्टर के यहाँ भेजती हूँ। यहीं के रहनेवाले हैं। जरूर किसी न किसी को जानते होंगे।

जच्चा की हालत सोचकर मेरा दिल काँप उठा।

मुझे ध्यान आया डाक्टर मिस सेन का, जिनका साइनबोर्ड दस बरस

से मैं पढ़ता आ रहा था। लवे सड़क है उनका घर। तय किया कि उन्हीं के पास चलना चाहिए। घर दूर न था। जल्दी ही पहुँच गया। आवाज लगाना शुरू किया। डाक्टरनी साहिबा सो रही थीं। उनके कुत्ते ने उनकी तरफ से जवाब देना शुरू किया। कुत्ते के जवाब में इतना उत्साह और इतनी बेसब्री थी कि मेरी आवाज उसी में खो गयी।

कुत्ते के भूँकने से जगते हुए डाक्टरनी साहिबा ने वहीं छत पर से मेरा नाम-गाम पूछा और पूछा कि मैं क्या चाहता हूँ। मैंने अपना नाम-गाम बतलाया और बतलाया कि हमारे यहाँ ऐसी-ऐसी बात हो गयी है, अब हम लोग बड़ी अजब हालत में हैं, किससे इस वक्त मदद लें, कुछ समझ में नहीं आता। इसी लिए आपके पास चला आया हूँ।

मेरी बात सुनकर डाक्टरनी साहिबा थोड़ी देर खामोश रहीं; फिर बोलीं—आप किसको ले जाना चाहते हैं?

इस सवाल को मैं कुछ ठीक से न समझा। बोला—जिसके जाने से मेरा काम हो जाय।

मेरे जवाब में जरूर निश्चय की कमी रही होगी, इसलिए एक लमहे को खामोशी के बाद डाक्टर मिस सेन ने कहा—आप विक्टोरिया मेमोरियल हास्पिटल चले जाइए, वहाँ आपको बहुत-सी मिडवाइव्ज़ मिल जायँगी......इन शब्दों के साथ वह अंतर्धान हो गयीं और उनका कुत्ता फिर मुझसे बात करने लगा।

विक्टोरिया मेमोरियल अस्पताल विक्टोरिया पार्क में है। विक्टोरिया पार्क के फाटक सरे शाम से ही बन्द हो जाते हैं। मैंने जल्दी से रिक्शा लिया और पीछे की तरफ से अस्पताल पहुँचा। उसका भी फाटक बन्द था। फाटक से दस-पन्द्रह गज की दूरी पर चौकीदार सो रहा था। यों अभी बजे मुश्किल से दस थे। हमारी आवाजों से चौकीदार साहब जगे। लेकिन जगकर फाटक उन्होंने नहीं खोला। वह अपनी जगह पर लेटे-लेटे ही मुझे अपना कीमती मशविरा देने लगे। बोले—आपका घर किस मुहल्ले में है?

मैंने कहा—गुदौलिया।

—वह वार्ड कौन-सा पड़ता है?

—दशाश्वमेध।

—आप यहाँ क्यों आये? यहाँ से तो कोई आपके साथ जा न सकेगा।

मेरी आवाज में अब थोड़ा तनाव आ गया था—यहाँ पर कोई डाक्टर है कि नहीं, जिससे अपनी बात समझाकर कह सकूँ?

उसने उसी लापरवाही से जवाब दिया—हैं क्यों नहीं, बड़ी डाक्टर हैं; मगर—

—मैं उन्हीं से बात करना चाहता हूँ, आप फाटक खोलिए।

तब चौकीदार साहब पूरे दिलोजान से फाटक की चाभी ढूँढ़ने लगे, और मेरा गुस्सा ऊपर को चढ़ने लगा। यहाँ मैं फाटक के बाहर खड़ा खड़ा इस सूरतहराम चौकीदार से बहस कर रहा हूँ और वहाँ सतवती बैठी कराह रही है। एक-एक पल उसकी और बच्चे की जिन्दगी के लिए अनमोल है। देर होने से बच्चे की जिन्दगी का चिराग बुझ सकता है। बच्चा जो कि खुद चिराग है सतवती की बुझी हुई जिन्दगी का। सतवती का पति तीन महीने हुए मरा है और अब इसी बच्चे से उसका वंश या तो चलेगा या मिट जायगा।

उसी वंशदीप की रक्षा का मुझे प्रबन्ध करना है और यह चौकीदार का बच्चा लेटा-लेटा कानून बघार रहा है।

तब तक टिटिहरी की तरह टाँगवाले, जवानी में ही पिचके गालवाले, स्याहफाम चौकीदार साहब अपने से दो बीता ऊँचा बल्लम लिये फाटक पर आ गये थे।

मैंने मन में कहा (ऐसी बातें मन में ही कहनी भी चाहिए)—दो झाँपड़ का भी तो नहीं है, लेकिन बात कैसा चबर-चबर करता है!

कान में चौकीदार साहब की आवाज पड़ी—यहाँ सारा इंतजाम वार्डों

के हिसाब से है। यहाँ पर सिर्फ दो दाइयाँ हैं, जिन्हें यहाँ से हटने की इजाजत नहीं है। आपके वार्ड में भी दो दाइयाँ हैं। गिरजाघर से जो सड़क मेरूपूर को जाती है, उसी पर अगल-बगल दोनों का घर है, उनको ले जाने में आपको हर तरह का सुभीता रहेगा।

इन अनचाहे मशविरों से मेरा तमाम शरीर फुँक-सा रहा था। कहाँ तो मैं यह चाहता था कि दाइयों को लेकर उड़कर घर पहुँच जाऊँ और कहाँ यह कैफियत है कि हर ऐरे-गैरे नत्थूखैरे की जिरह का जवाब देना पड़ रहा है।

चौकीदार ने आखिरकार फाटक खोला और मैं अंदर दाखिल हुआ। आगे-आगे बल्लमधारी चौकीदार और पीछे-पीछे मैं। चौकीदार ने बड़ी डाक्टरनी को आवाज लगायी, डरते-डरते। तीन-चार आवाजों के बाद छत पर से उनके सवालों की झड़ी शुरू हुई। खुली छत पर आसमान के चँदोवे के नीचे, दूधिया चाँदनी में वह मजे के साथ लेटी हुई थीं। मेरे पहुँचने से उनके आराम में खलल पड़ा, बुरा लगने की बात ही थी। सवाल हुए—आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? क्या चाहते हैं?

मैंने तीसरी बार अपनी मुसीबत की दास्तान कहना शुरू किया। बात मैंने शुरू ही की थी कि हेड डाक्टरनी साहिबा ने जैसे उकताते हुए कहा—ठीक है, ठीक है। आप अपने वार्ड की नर्स को क्यों नहीं ले जाते? यहाँ से अगर कोई जायगा तो रिक्शा का किराया आपको देना पड़ेगा।

मैंने अपनी किस्मत ठोंक ली—यह सारी जिरह और सलाह-मशविरे और खींचतान महज रिक्शा के किराये पर से हो रही थी! मेरे कान में सतवती के कराहने की आवाज और तेज हो गयी।

मैंने चिढ़ते हुए कहा—साहब, मैं दूँगा रिक्शा का किराया, किसी और की तलाश में जाने का वक्त कहाँ है?

डाक्टरनी साहिबा ने वहीं से चौकीदार को हुकुम दिया कि श्यामा नाम की नर्स को इनके साथ जाने के लिए कहो।

सभी कामकाजी लोगों की तरह थककर चूर श्यामा भी सो रही थीं,

उनके सिर पर ही तमाम बातें हो रही थीं, लेकिन उनपर कोई असर नहीं था। जो बात अपने को जता करके नहीं कही गयी वह कान में पड़कर भी जैसे न पड़े, इसका अभ्यास कठिन जरूर है, लेकिन बेकार की उछल-कूद और थकान से भरी हुई इस दुनिया में इस बात की कितनी जरूरत है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

चौकीदार के आवाज लगाने पर श्यामा उठीं। उन्होंने बिजली जलायी और चलने की तैयारी करने लगीं। अन्दर उनकी क्या तैयारी हो रही है यह इन्सान की आँख से छिपा था। लेकिन हाँ, मिनट पर मिनट गुजरते जा रहे थे, कीमती, अनमोल, खतरनाक मिनट! बीच-बीच में श्यामा के कमरे से हरिया-हरिया की आवाज उठती। बाद में मालूम हुआ कि हरिया दाई है, उस वक्त तो उसकी शक्ल कहीं दिखायी न दी।

मेरे दिमाग में इस वक्त दूसरा ही अंधड़ बह रहा था।

शाम को दाल में नमक ज्यादा था, मुझसे दाल खायी न गयी। मैंने बहुत तेवर के साथ अम्माँ से कहा—अब कायदे की दो रोटी और दाल भी नसीब न होगी क्या?

अम्माँ ने पूछा—क्यों? क्या बात है?

मैंने कुढ़कर कहा—देश-भर का सारा नमक लाकर दाल में झोंक दिया गया है, मुँह में दी नहीं जाती।

अम्माँ ने अपनी बेबसी का रोना रोया—क्या करूँ बेटा! मेरी तो मट्टी खराब हुई जाती है। यही खाना-पानी देखने में। हरदम साथ लगी रहती हूँ तो कहीं जाकर यह रोटी-दाल मिल पाती है...मुझसे अब लगातार बहुत देर चूल्हे के पास नहीं बैठा जाता। पाँच मिनट को निकल आयी, निकली तो बतलाती आयी कि सतवती! दाल में नमक मत छोड़ना, मैं आकर डाल दूँगी।

मैंने दाँत दबाये-दबाये ही कहा—कुछ सीखना नहीं चाहती, जाँगरचोर!.....

नर्स और हरिया आखिर जब तैयार होकर निकलीं और नर्स ने कहा—'चलिए, रिक्शा किधर है' उस वक्त मेरी आँखों के सामने सतवती की दो तसवीरें एक पैसेवाले देहाती बाइस्कोप की तरह एक के बाद एक आ-जा रही थीं (देख तमाशा देख, चलती रेलगाड़ी देख, जर्मन की लड़ाई देख.........) तुरंत के जने बच्चे को गोद में लेकर बैठी कराहती हुई सतवती और उसके सिर्फ साठ मिनट पहले चूल्हे की लपट में राख होती हुई सतवती, जिसकी आँखें धुएँ से लाल हैं, जिसके कान थकान से बहरे हो गये हैं, इतने कि वह अपनी कोख में बैठे हुए अपने वंशदीप की पुकार को भी नहीं सुन पाती, जिसके हाथ रोटी बेल रहे हैं, बेल रहे हैं...और जिसका दिमाग इतना खाली-खाली है कि पूछने पर वह जोर देकर नहीं कह सकती कि जिस चीज पर उसका बेलन चल रहा है, वह उसकी जिन्दगी नहीं, आटे की लोई ही है......

['नया हिन्द'—अगस्त, १९४६]

आज स्वाधीनता दिवस है। स्वाधीनता की शपथ का दिन। मुक्ति के संकल्प का दिन। बलिदानों की प्रतिश्रुति का दिन। तपते लाल लोहे की शलाका से मानसपट पर अपने कर्तव्य का चित्र आँकने का दिन। शहीदों की याद का दिन। उद्धत ब्रिटिश साम्राज्य की नृशंस सत्ता को चुनौती देने का दिन। आदमखोर को निहत्थे आदमी की चुनौती। हैवान को इंसान की चुनौती। दमन के कारखाने को मनुष्य की अदम्य आत्मा की चुनौती। अंधकारयुग को सभ्यता के सूर्य की चुनौती। मौत को जिन्दगी की चुनौती।

सवेरे जल्दी से हाथ-मुँह धोकर निकला तो घर से सौ गज पर ही एक प्रभात-फेरी मिली। दस-पन्द्रह आदमी दो बड़े-बड़े राष्ट्रीय झंडे लिये हुए और उनके पीछे पन्द्रह-बीस लड़के, सात-सात आठ-आठ साल के, बहुत-से कागजी झंडे लिये हुए। मैंने मन में कहा, बस ! और स्त्री एक भी नहीं ! तुर्की टोपी का कहीं पता नहीं ! भारत की स्त्री स्वाधीन नहीं होना चाहती ! उसका प्रभात अभी नहीं हुआ ! प्रभात-फेरी उसे जगा नहीं सकी !

दोष जगानेवाले का है जिसे यही पता नहीं है कि भारतीय नारी जाग चुकी है। अब उसे पुकारने-भर की जरूरत है और वह बलिदानियों की-सेना में आप ही आकर खड़ी हो जायगी। आसमान से नहीं टपकी थीं वे

स्त्रियाँ जिन्होंने अपनी वीरता से पुरुषों तक को लजा दिया, ग्वालियर में, बंबई में। आँसू गैस भी उनके लिए जैसे प्रातःसमीर बन गयी जिसने उन्हें संजीवन ही प्रदान किया कि वे भारत का माथा ऊँचा रख सकें, ऊँचा, और ऊँचा कि सब उसे देख सकें। उनके पैरों में लोट रही थी मदोन्मत्त ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी सत्ता।

प्रभात-फेरी आगे बढ़ गया। मैं भी आगे बढ़ा। छन्नू पानवाला मिला। राष्ट्रीय विचारों का आदमी है, कभी-कभी खद्दर भी पहनता है, शायद एक-आध बार जेल भी हो आया है, प्रेमचंद का अनन्य भक्त है, राष्ट्रीय-दैनिक 'आज' रोज पढ़ता है। बहुत भला आदमी है। मैंने पूछा—छन्नू! तुम्हारे यहाँ प्रभात-फेरी नहीं निकली? छन्नू ने कहा—निकली तो...फिर मेरी प्रश्न करती हुई आँखों का जवाब देते हुए कहा—लेकिन मैं नहीं गया।

मुझे बुरा लगा। मन थोड़ा अस्वस्थ हुआ। किसी से पूछना है कि प्रभात-फेरी क्या सिर्फ उन लोगों के लिए होती है जिन्हें रात को नींद नहीं आती?

चेतगंज थाने के पास मुझे सफेद बालोंवाला सी० आई० डी० मिला। भलेमानुसों का घर उजाड़ते-उजाड़ते, नौजवानों की जिन्दगी तबाह करते-करते उसके बाल सफेद हो गये हैं। मुझे खाली कुर्ता-पाजामा पहने देखकर बोला—कुछ और पहन लीजिए। मैंने कहा—शुक्रिया।

चेतगंज के एक बनिये की दूकान पर बहुत बड़ा राष्ट्रीय झंडा टँगा हुआ था, इतने भोंडे ढंग से कि लहराने की गुंजाइश न थी। भीतर बनिये की तिजोरी पर एक छोटा-सा झंडा खोंसा हुआ था। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन पर कितना गहरा व्यंग्य! इसकी तिजोरी के एक-एक रुपये पर गरीबों के खून के दाग हैं। उन्हीं रुपयों को वह जनता के रोष से बचाना चाहता है इस तिरंगे की आड़ में।

बेनिया बाग पार करके शेख सलीम के फाटक पर पहुँचा। यह मुसलमानों की बस्ती है। यहाँ कहीं तिरंगे झंडे न थे। थोड़ा आगे बढ़ा,

कोदई की चौकी पर। एक मकान पर तिरंगा फहरा रहा था। यह एक हिन्दू बनिये का मकान है। उसकी गुड़ की दूकान है। मैंने अक्सर उसके यहाँ ऊँट खड़े देखे हैं। ऊँटों पर लदकर गुड़ बिकने आता है। तिरंगे झंडे के बहुत पास के दो मकानों में बड़े-बड़े लीगी झंडे लगे हुए थे। सनातनधर्म स्कूल के सामने से ये तीनों झंडे एक साथ नजर आते हैं और तब बरबस ऐसा लगता है कि अखाड़े में पहलवान पैर जमाये खड़े हैं।

आगे बढ़ा। पचीस-तीस यात्री गंगा नहाने चले जा रहे थे। उन्हें स्वाधीनता दिवस की कोई खबर न थी। उनके लिए यह दिन भी और दिनों ही की तरह था। वे आपस में बात कर रहे थे कि अमुक आदमी अमुक समय पर अमुक गाड़ी से आयेगा। तब तक हम लोग दरसन-परसन कर चुके रहेंगे।

रुस्तम के यहाँ पहुँचा। पूछा—झंडाभिवादन कहाँ होने को है, तुम्हारे यहाँ या पार्टी दफ्तर में? रुस्तम ने कहा—पार्टी दफ्तर में। मैंने कहा—पार्टी दफ्तर तो बन्द है। हरिहर ने कहा—बिशू आता ही होगा। मैंने रुस्तम से कहा—तुम भी जल्दी से नहा लो तो साथ चलें। रुस्तम ने नहाने के कमरे के दरवाजे पर खड़े खड़े कहा—यार, मेरा जोश ठंढा पड़ गया। जानता हूँ गलत बात है लेकिन राष्ट्रीय झंडा, कांग्रेस, सब जैसे धोखा मालूम पड़ता है।......दो दिन आगे बम्बई में हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी के सदर दफ्तर पर बहुत से गुण्डों ने कांग्रेस के नाम पर, कांग्रेस के नारे देकर एक संगठित आक्रमण किया था, लीनोटाइप मशीन तोड़-फोड़ डाली थी, पुस्तकें और फर्नीचर जला दिया था और आग बुझाने के लिए साथी जब लपके तब उन्हें बुरी तरह मारा था। साठ कम्युनिस्ट घायल हुए थे, कुछ को बहुत सख्त चोट आयी थी। एक लाख रुपये का नुकसान हुआ था...मैंने सोचा, आज कितनी आग इस आदमी के अन्दर न सुलग रही होगी जो इसे राष्ट्रीय झण्डे और राष्ट्रीय कांग्रेस से वितृष्णा हो रही है। जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के कुछ ही देर बाद वह घटनास्थल पर पहुँचा था। कसाई डायर के कारनामे उसने अपनी आँखों से देखे थे।

उन लाशों की तसवीर आज भी उसकी आँखों के सामने है। तब वह आठ-नौ साल का था। तभी उसने ब्रिटिश साम्राज्य को उलटने की कसम खायी थी। अपने इसी संकल्प को पूरा करने के लिए उसने तिरंगे झंडे के नीचे लाठियाँ खायी हैं, कुल मिलाकर दस साल जेल में काटे हैं। जो शपथ उसने तब ली थी वह उसकी बालचपलता नहीं थी, क्योंकि शपथ लेते समय वह बालक नहीं था—अपने देशवासियों की तड़पती हुई लाशों ने उसे वयस्क बना दिया था।...आज उसे अपने उसी चिरपरिचित झंडे से, जिसके प्रति अपनी भक्ति की वह एक बार नहीं दो बार नहीं, बार-बार अग्निपरीक्षा दे चुका है, विराग हो रहा है। मेरा मन भी उदासी से भर उठा......

झंडाभिवादन से लौटते समय त्रिपाठी ने कहा—दि रेस्तोराँ पर से पुलिस ने झंडा हटा दिया। मैंने उधर देखते हुए कहा—नहीं तो। त्रिपाठी ने कहा—नहीं, यह झंडा नहीं; तुमने देखा नहीं, तिरंगी झंडियों का बन्दनवार बनाया गया था, सुभाषदिवस को। उसे पुलिस ने तोड़-ताड़कर अलग कर दिया। मैंने कहा—क्यों? उसने कहा—गवर्नर साहब की सवारी इधर से गुजरी थी। मैंने कहा—किसी ने विरोध नहीं किया? बहुत होता, हवालात हो जाती, शहर भर में तहलका तो मच जाता। त्रिपाठी ने उदासीन भाव से कहा—पता नहीं, क्यों विरोध नहीं किया। इस प्रश्न का उत्तर दिया एक दूसरे रेस्तोराँ के मालिक ने—साहब, सब रोजगार की बातें हैं। देखता हूँ, चारों तरफ ऐसा अंड-बंड झंडा लगा हुआ है कि किसी आजाद देश में ऐसा कोई करता तो सजा हो जाती, लेकिन हिन्दुस्तान तो गुलाम है न? यहाँ सभी चीजों का रोजगार होता है।

रेस्तोराँवाले ने बात ठीक कही थी। चारों तरफ झंडों की बाढ़-सी आयी हुई थी, लेकिन किसी को इस बात का पता ही जैसे न था कि राष्ट्रीय झण्डे में कौन-कौन-से रंग हैं और कौन रंग ऊपर है, कौन रंग

नीचे और कौन रंग बीच में। झंडा बनानेवालों को बस कोई भी तीन रंग भरने से सरोकार था। एक झण्डे में हरा ऊपर था, बीच में सफेद, नीचे लाल, जिसे केसरिया मानना होगा। एक झण्डे में सफेद ऊपर था, बीच में हरा, नीचे गुलाबी। एक झण्डे में लाल ऊपर था, बीच में सफेद, नीचे पीला। एक में हरा ऊपर था, बीच में सफेद, नीचे गदहे का रंग। नीला, लाल, सफेद। पीला, हरा, सफेद। हरा, सफेद, बैंगनी......

एक दूकान पर मैंने देखा कि बहुत-से कागजी झण्डे तिरंगी पतंगों की बगल में गुड़ी-मुड़ी रखे हुए थे।

सारा जोश झंडों में ही बिखरकर खत्म हो गया था जैसे गिलास का पानी गिरकर पतली धारा के रूप में बहता हुआ किसी चौड़ी जगह में पहुँचकर फैल जाता है।

चारों ओर सियापा था, मुर्दनी थी। कहीं किसी तरफ जान जैसी जान नहीं थी। लोग सबेरे ज्यों-ज्यों प्रभात-फेरी निकालकर अपने काम में लग चुके थे। मानों जनता अब जाग चुकी थी, उसे अब और जगाने की जरूरत न थी, उसे अब और कुछ बतलाना जरूरी न था, उसके लिए हमारे पास अब कोई सन्देश न था...

आज हवा को चीत्कार करके कहना चाहिए था—'आजादी या मौत' लेकिन कहाँ थी हवा में वह गूंज कि साँस लेने से पता चलता कि आज स्वाधीनता दिवस है और आज करोड़ों भारतवासी भारतभूमि की स्वतंत्रता के लिए प्राण-विसर्जन की शपथ ले रहे हैं, समझ-बूझकर बलि-पथ पर चलने का व्रत ले रहे हैं, सदियों के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए, चरम प्रतिशोध...नहीं था वह जोश कि लाल मुँह के हमारे शासक उसमें अपनी मौत लिखी हुई पढ़ लेते। इस लिखावट को बहुत साफ होना चाहिए। क्योंकि जिन आँखों को उसे पढ़ना है उन पर घमण्ड की चर्बी चढ़ी हुई है, वह घमण्ड जिसे चूर-चूर कर पैरों से हमने न रौंदा तो व्यर्थ हुआ हमारा जन्म, व्यर्थ बढ़ाया हमने भार पृथ्वी का। सुन लो, अपमान की जो आग सदियों पहले तुमने प्लासी के मैदान में जगायी थी वह आज

प्रतिशोध की आग बन गयी है और तुमसे माँग करती है एक नये प्लासी की, हमारे प्लासी की, हम तुमसे युद्ध करेंगे...

पर नहीं, सड़कें चल रही थीं, लेकिन संगठित, पंक्तिबद्ध जनता के पदत्राप का स्वर कहीं नहीं था। कहीं नहीं, विश्वविद्यालय के वीर तरुणों में भी नहीं। सब अपने कमरे में बन्द थे, सड़कें सूनी थीं। सब अपने मन की सीमाओं के बन्दी थे। हवा हरहराती हू-हू करती डोल रही थी। चारों ओर पतझड़ का दृश्य था जिसे वातावरण की शिथिल निःस्तब्धता ने और भी अधिक भयावह बना दिया था।...

...गोदौलिया पर विशाल भीड़ इकट्ठी थी, शहर-भर से आयी हुई नदियों का संगम हो गया था। अनगिनत राष्ट्रीय झण्डों और थोड़े-से पोस्टरों को, जिन पर 'अगस्त क्रान्ति जिन्दाबाद' और ऐसे ही एक-दो नारे लिखे हुए थे जो आज के लिए हमारा कोई कर्तव्य नहीं निश्चित करते, हवा में उड़ाता हुआ जुलूस बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। जुलूस की गति धीमी और कुछ शिथिल-सी है। इसलिए नहीं कि लोगों में जोश का उबाल नहीं है और उनके पैर थक रहे हैं, बल्कि इसलिए कि ये हजार-हजार भारतीय, जो आज हृदय में मुक्ति की मशाल लिये सड़कों पर निकल आये हैं, एक विशाल भीड़ बन गये हैं, स्नानार्थियों की भीड़, बलिदानियों की संगठित, अनुशासित, अमोघ स्वातन्त्र्य-सेना नहीं, रक्तगंगा के स्नानार्थी नहीं......

...जुलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। सड़क के दोनों ओर तमाशाई जनता है जिसे यह नहीं मालूम कि अब हमारी लड़ाई में लड़नेवालों और तमाशा देखनेवालों की दो श्रेणियाँ नहीं रहीं, जो लड़नेवाला है वही सर पर कफन बाँधकर विदेशी हुकूमत का नंगा नाच देख सकता है—विकट 'तमाशा' है यह जिसे देखने के लिए उन आँखों की जरूरत है जो सदियों के अपमान और प्रवंचना से जल रही हैं, जिनमें सदियों की पीड़ा खून बनकर आँखों में उतर आयी है, जिनमें जंजीरों से जकड़े हुए जीवन की

विभीषिका आजादी का अन्तिम अपराजेय संकल्प बनकर चमक रही है... कापुरुषों की तरह खड़े-खड़े तमाशा देखनेवालों पर देश आज थूकता है, क्योंकि उसे जरूरत है घर फूँककर तमाशा देखनेवालों की, क्योंकि घर जब फुँकेगा, तभी देश आजाद होगा।

जुलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है और नारे लगातार लग रहे हैं...

इंकलाब जिन्दाबाद—

गले में हो फाँसी का हार—इंकलाब जिन्दाबाद

ढिल्लों सहगल शाहनवाज—इंकलाब जिन्दाबाद

जेलों से आयी आवाज—इंकलाब जिन्दाबाद

गले में हो फाँसी का हार—इंकलाब जिन्दाबाद

...मेरी आँखों के सामने वीर सिन्धी तरुण हेमू कलानी का चित्र फिर गया जिसे अगस्त आन्दोलन में अपनी आजादी की तड़प का सुबूत देने के 'जुर्म' में फाँसी हुई। और अकेले हेमू कलानी ही नहीं, उस जैसे अनेक तरुण जिन्होंने फाँसी को गले का हार समझा। और घूम गयी मेरी आँखों के सामने भगतसिंह की तस्वीर जिसने लाखों भारतीयों को इस शान के साथ मरना सिखाया कि मरते-मरते भी दुश्मन को दहला सकें, उसके प्रति अपनी करुणा से, मृत्यु के प्रति अपनी घृणा से, मृत्यु को हेय समझकर, मृत्यु को नवजीवन समझकर...दुश्मन भी एक बार देख ले कि शेरों का कलेजा रखनेवाले भारतीय वीर किस तरह मरते हैं...मरकर भी वे जी जाते हैं, मरकर भी वे जल्लाद के मुँह में कालिख पोत जाते हैं, मरकर भी वे मरते नहीं क्योंकि उनकी जगह लेने के लिए, उनकी लड़ाई चलाने के लिए, उनकी हत्या का बदला लेने के लिए, उनकी चिरमुक्त आत्मा पर से दासता का क्रूर बोझ हटाने के लिए अगणित भारतवासी तैयार हैं......

मुझे याद आ गयी सन् तीस-बत्तीस के आन्दोलन की। तभी भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु को फाँसी हुई थी। तब मीटिंगों में, जुलूसों में भगतसिंह के बैज बिका करते थे जिनमें वह वीर योद्धा सीना खोले मुस्कराया करता था, गोया गोली का इन्तजार करने में उसे गुदगुदी मालूम हो

रही है। उस वक्त भगतसिंह की फाँसी ही सबको भाले की नोक की तरह चुभा करती थी ; हरदम बस यही लगता कि कैसे इस असाधारण वीर आदमी के हत्यारों से प्रतिशोध लें, भगतसिंह सिर्फ चौबीस साल का था जब उसे फाँसी हुई थी। एक गाना लोग उसके बारे में गाया करते थे—फाँसी का झूला झूल गया मरदाना भगतसिंह। तब मैं छोटा था, नौ-दस साल का। जुलूस में जाने और अपनी बचकानी आवाज में नारा देने से ज्यादा कुछ न कर सकता था। बहुत किया तो नमक के कड़ाह (वह नमक आन्दोलन के दिन थे) की छीनाझपटी में थोड़ा जोर लगाया, लेकिन पुलिस के कानिस्टिबिल मुझे बहुत आसानी से अलग कर देते थे, जैसे मैं कोई हूँ ही नहीं...

सारा चित्र मेरी आँखों के सामने फिर जाता है। चित्र धुँधला जरूर है, लेकिन बात काफी पुरानी हुई यह देखते हुए चित्र को साफ कहना पड़ेगा। तभी नारा लगता है—गले में ही फाँसी का हार...फाँसी के हार की कल्पना अच्छी है, लेकिन मुझे भगतसिंहवाला गाना ज्यादा पसन्द है, बहुत ज्यादा—फाँसी का झूला झूल गया...हार में एक निष्क्रियता-सी है, मृतक का सम्मान जैसे, लेकिन जो देश के लिए फाँसी के तख्ते पर मजबूती से पैर रखता है वह क्या कभी मरता है ? और उसका सम्मान क्या तुम गजरों और हार से करोगे ? छिः, उसका सम्मान तो हर वह वीर करता है जो सरकार की गोली खाकर या उसकी रस्सी में अपना गला फँसाकर हमेशा-हमेशा के लिए सो जाता है। भगतसिंह की स्मृति का सम्मान किया हेमू कलानी ने। उसकी स्मृति का सम्मान किया कय्यूर के किसान शहीदों ने, कोयंबटूर के मजदूर शहीदों ने, अगस्त आन्दोलन के उन नामहीन शहीदों ने जिनके नाम और पते की खोज-ढूँढ़ आज हो रही है, रामेश्वर बनर्जी ने और उसके भाई-बन्द कलकत्ता, ग्वालियर और बम्बई के उन वीरों ने जिन्हें फिरंगी की मशीनगन और टामीगन से अब जरा भी डर नहीं मालूम होता क्योंकि जान लेने से ज्यादा वे भी कुछ नहीं कर सकतीं...

...फाँसी वरण करनेवाले को हार का सम्मान नहीं चाहिए, तुम्हारे हृदय में अगर कोई आग धधक रही है तो वही उसका सम्मान है। फाँसी के झूले में कुछ और ही भाव है, उसमें गति है, पेंग है; डोरी पकड़कर एक बार झटके के साथ घने अन्धकारवाले शून्य में झूल जाने का भाव है, शून्य जिसका कि विस्तार धरती से लेकर आकाश तक है...

...ओछे सम्मान की कहीं गुंजाइश नहीं है...तपस्या की गरिमा से हटकर कोई चीज न चल सकेगी। और तब मैं तुमसे पूछता हूँ कि वह भारतमाता की तसवीर जो दो घोड़ों की फिटन पर चढ़कर बंगालियों की गौरी के समान जा रही है, उसमें क्या कोई गरिमा है जो शहीदों का सम्मान कर सके? वह तसवीर जो भारतमाता को सिनेमा के विज्ञापन की तरह पेश कर रही है, मुमताज शान्ति या नसीम या ऐसी ही अन्य किसी चलती हुई तारिका के समान...छिः छिः, मेरा मन घृणा और आक्रोश से भर उठता है। मुझे जवाब दो, क्या भारत का वैसा ही हँसता हुआ, कमल के समान खिला हुआ, स्निग्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न आधुनिका का-सा चेहरा है? मुँह मत चुराओ, मुझे जवाब दो, मैं जवाब चाहता हूँ। अगर भारतमाता सचमुच वैसी है तो फिर यह जगह-जगह लाठी-गोली के क्षत क्यों? मेरी आँख से आँख मिलाओ और कहो, कहाँ हैं उस चित्र पर दासता के चिह्न, कहाँ हैं उस चित्र पर शोषण के असंख्य क्षत, कहाँ है उस चित्र पर दरिद्रता की कालिमा, कहाँ है उस चित्र पर भूख की न मिटनेवाली छाया, कहाँ हैं उस चित्र पर जुल्मी अँग्रेज शासक की बेड़ियाँ, कहाँ है उस चित्र पर वह उदासी जो माँ को अपने बच्चे को भूखा मरते देखकर होती है? पता चलता है उस चित्र से कि उसी भारतमाता का एक लाल एक ऐसे दुर्भिक्ष से पीड़ित हुआ था जिसका उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता? है कहीं उस चित्र पर पैंतीस लाख लाशों का मरघट? उसके किसी कोने से कहीं सुन पड़ता है, कोटि-कोटि भारतवासियों का आर्तक्रन्दन या सतेज भारत की रण-हुंकार? तब कैसा चित्र है वह भारत का? वह चित्र एक गन्दा धोखा है। वैसा ही गन्दा धोखा जैसा कि वह सरकारी पोस्टर था

जो नईम के यहाँ देखा था...भारत का नक्शा, नक्शे पर एक रूपसी नाच रही है। नक्शे के पश्चिम में अर्थात् भारत के पश्चिमी सिंहद्वार पर हिटलर खड़ा है और पूर्वी सिंहद्वार पर तोजो, और पोस्टर के नीचे मोटे-मोटे अक्षरों में सरकार का एक आह्वान लिखा है—अपनी सुख-समृद्धि की रक्षा कीजिए! भारत का प्रतीक वह रूपसी! एक गलीज धोखा, एक घिनौना षड्यन्त्र, एक भयानक झूठ, लाश को छिपानेवाली एक चाँदतारों से टँकी रुपहली चादर, गफलत की नींद में सुला देनेवाला एक खतरनाक नशा। यह भारतमाता उसी की प्रतिकृति है, भारतमाता की यह मोटी दफ्ती की बनी कदे-आदम तसवीर...मैं माफ नहीं कर सकता उस आदमी को जिसके दिमाग की यह अनोखी सूझ है। मुझे भूलती नहीं उन कांग्रेस नेता की सूरत जो बड़ी अदा के साथ, एक खास अंदाज के साथ, फिटन के फुटबोर्ड पर खड़े थे, भारतदेवी के पुजारी बने हुए। अपनी स्थिति का गौरव उनके चेहरे पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था, लेकिन मुझे तो यही लगा कि उन्होंने एक कुन्द छूरी से भारतमाता का गला रेत दिया।

मैं कहता हूँ कि अगर चित्र बनाना ही था तो एक नंगी, चिथड़ों में लिपटी हुई, जंजीरों में जकड़ी हुई, बूढ़ी औरत का चित्र बनाते। दिखलाते कि भारतमाता जमीन पर पड़ी हुई है और उसकी छाती पर अँग्रेज जमकर बैठा हुआ है, अंग्रेज जो एक हाथ में अणु बम लिये हुए है और बार-बार प्रसन्नतापूर्वक उसका प्रदर्शन कर रहा है। और फिर दिखलाते कि इस भारतमाता की संतानें अपने अपराजेय शौर्य से अपनी माँ की जंजीरों को काटने और अंग्रेज शासक को इतिहास के पन्नों से पोंछकर हटा देने के लिए चल खड़ी हुई हैं, इसके लिए चाहे जो कीमत चुकाना पड़े, आजादी किसी भी मोल सस्ती है। भारतीय मानवता का अंतिम स्वातंत्र्य-अभियान जो विजय से अभिषिक्त होकर ही रुकेगा......

लेकिन वहाँ तो कुछ दूसरा ही रंग था। वधू के समान अलंकृता भारतमाता के आगे-आगे चल रही थी शहनाईवालों की एक मंडली। भारतमाता का विवाह हो रहा था और हम सब उसके लड़के बराती

थे !......यह कबीर की उलटबाँसी नहीं, क्रूर वास्तविकता थी...यह शहनाई मुझे मुँह चिढ़ा रही है, मेरा मन विरक्ति से, आक्रोश से भरा जा रहा है। मौका है यह शहनाई का या मारू का जो रण के लिए आह्वान करे, पैरों में बिजली की तेजी भरे, तन-मन में आग-सी लगा दे जो दुश्मन का खून पिये बगैर कभी बुझे न ; जिसे सुनकर अंग-अंग में एक फड़कन आ जाये, कुछ करने के लिए, किसी से गुँथने के लिए, प्राणों की बाजी लगाने के लिए, एक बार सभी कुछ दाँव पर लगाकर भिड़ जाने के लिए, एक बार, अंतिम बार......फिर देखा जायगा, मरता तो आदमी एक ही बार है। शहनाई की ध्वनि मेरे हृदय पर आरी-सी चला रही है क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि वह हमारी मुक्ति-सेना को शिथिल बना रही है, उसको शिथिल बना रही है जिसे केवल एक काम आना चाहिए, प्राण लेना और प्राण देना, क्योंकि प्राणों का यह लेन-देन एक व्यक्ति के प्राण का लेन-देन नहीं है, सत्य के प्राण का लेन-देन है।

मेरा देश संकट में है, उस पर विपत्ति घहरा रही है। आज स्वाधीनता-दिवस को दीवाली मनायी जा रही है...दीवाली इसलिए कि हमारे भाइयों की लाशें देश के कोने-कोने में गिर रही हैं, तड़प रही हैं, तड़पकर दम तोड़ रही हैं ! दीवाली इसलिए कि हमारी माँ बहनों को बलात् वेश्या बनाया जा रहा है ! दीवाली इसलिए कि हमको कुत्तों-बिल्लियों की मौत मिल रही है ! दीवाली इसलिए कि आज देश में बड़े तो बड़े, बच्चे तक भूखे-पेट सो रहे हैं ! दीवाली इसलिए कि आज देश विनाश के कगार पर खड़ा है ! घरों में चिराग नहीं जलते। अँधेरे में जीते-मरते ही घर के चिराग बुझ जाया करते हैं और बुझा दिये जाया करते हैं सैकड़ों हजारों की तादाद में, दुश्मनों की संगीनों से, गोली-गोलों से, जेल से मिली हुई तपेदिक से। इसी सबकी खुशी है जिसे तुम दीवाली की जगमगाहट में पढ़ना चाहते हो ! आज दीवाली मनाना राष्ट्र का अपमान करना है, उसकी पीड़ा की उपेक्षा करना है। तुम जो एक दिया जलाते हो अपने घर में, वह उपहास करता है उस दिये का जो अभी कल

बम्बई में बुझा है और परसों कलकत्ते में, और उसके एक रोज पहले ग्वालियर में...और...

लेकिन कैसा है दिया तुम्हारा जो शहीदों की तपती हुई, क्रुद्ध साँसें भी उसे नहीं बुझा पातीं ! और उनके बच्चों की सर्द पुकारें, उनकी नव-परिणीता विधवाओं की ठंडी आहें...उनसे तुम्हारे कलेजे में कोई पीर नहीं उठती ! तब तुम्हारा दिल दिल नहीं पत्थर है। सदियों के अपमान ने उसकी खाल को मुर्दा बना दिया है, फुटबाल की तरह जिसे जितनी ही ठोकर लगाओ उतने ही ऊपर वह हवा में उड़ता है...

अपने ही भाइयों के खून से धरती भीग रही है, लेकिन तुम्हारे पैर के नीचे की धरती सूखी है, इसलिए तुम उनका तिरस्कार कर पाते हो। तुमने सुना है अफ्रिका के जंगलों में एक साँप होता है जो फूँक मार देता है तो उतनी दूर की घास जल जाती है और वहाँ फिर नयी घास नहीं उगती।

...शहनाई...दिये...हमारी लड़ाई खत्म हो गयी ? दुश्मन मार डाला गया ?

और अगर दुश्मन अभी मरा नहीं है, अगर अभी भी वह हमारी छाती पर सवार है, अगर अभी हमारी लड़ाई का सबसे रक्तिम अध्याय खुलने को है (तुम्हें मालूम है, हिन्दुस्तान की आबादी जावा की लगभग छः गुनी है।) तो फिर झूठी आशा की छलना का जाल क्यों ? यह जीत का-सा भयानक खुमार क्यों ? झूठी आशा की मदिरा पीनेवाले के पैर हमेशा डगमगाते रहते हैं। तुमने शराबी नहीं देखे हैं ? आत्मप्रवंचना की शराब से अधिक नशीली शराब दूसरी नहीं होती।

...और आज हम यही शराब पीकर गर्व से इठलाते चलते हैं और भूल जाते हैं कि हमारे आपसी झगड़ों ने हमारी आजादी को अँग्रेजों के हाथ भोगबंधक रख दिया है अनिश्चित काल के लिए...

मैंने देखा, दालमंडी के नुक्कड़ पर लगभग चार हजार मुसलमान खड़े थे, भौंचक से, सतर्क-से। 'अंग्रेजों को निकाल दो' का नारा दोनों तरफ के मकानों से टकराकर बम की तरह हवा में फूट रहा था। उसकी आवाज इन

चार हजार हिंदुस्तानियों के कानों में भी पड़ रही थी, लेकिन जैसे बस वहीं से टकराकर लौट आती थी, कोई प्रतिध्वनि न होती थी। खँजड़ी या डफ कहीं से फट जाता है तो उस पर लाख हाथ पटको, बस भप-धप की ही आवाज होती है, गूँज नहीं निकलती।...ये जो चार हजार मेरे सामने खड़े हैं, अंग्रेजों ने उन्हें सल्तनतें नहीं बख्शी हैं, बख्शी है मौत और बरबादी औरों ही की तरह। जो आग उन्होंने कसाईगाड़ा में लगायी वही आज इनके दिलों में सुलग रही है, भयानक नफरत की आग। लेकिन यह आग आज धधकती क्यों नहीं, हर जगह यकसाँ क्यों नहीं धधकती, सिर्फ धुँआती क्यों है?...नहीं, तुम यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि उसके दिल में भी अंग्रेजों के खिलाफ वही पुनीत घृणा नहीं है जो तुम्हारे दिल में है क्योंकि उसकी पिछली कुर्बानियों की याद चाहे तुम्हारे मन से मिट चली हो (गो कि वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि खून का दाग नब्बे तो क्या नौ सौ साल में नहीं मिटता, पचीस साल में तो और भी नहीं!) लेकिन चटगाँव, कलकत्ता, ग्वालियर और बम्बई और करांची और मद्रास में, देश के एक कोने से दूसरे कोने तक, जो खून उसने तुम्हारे साथ मिल कर बहाया है उसका दाग अभी धरती पर से भी नहीं मिटा है, दिलों से तो क्या मिटेगा, बहुत ताजा है वह खून और वही खून तुम्हें पुकार रहा है, बतलाओ कि क्यों आज उसके कानों में तुम्हारी बात पड़ती है और खो जाती है, जिस्म में कोई हरकत नहीं होती, आँखों से एक भी शरारा नहीं छूटता...

तुम्हें जवाब देना होगा—तुम सुन नहीं रहे हो, अंग्रेज हँस रहा है, अपनी तृप्त बर्बर हँसी, भेड़िया जैसे हँसे...

भेड़िया हँस रहा है और तुम उसके पहलू में अपना भाला नहीं भोंक सकते, आर-पार...कि भेड़िया वहीं ढेर हो जाय और उसकी हँसी उसी के गलीज, बदबूदार खून में डूब जाय, हमेशा-हमेशा के लिए।...

...सुनो, उसके फटे गले की घरघराहट कह रही है, एक-एक शहर बम्बई और कलकत्ता और बलिया बनेगा और एक-एक देहात पंचलाइश

और कसाईपाड़ा। तुम इस सुनी को अनसुनी न कर सकोगे, क्योंकि तुम्हारी आँखों के सामने तुम्हारी आँख के मोती टूट रहे हैं, धूल में बिखर रहे हैं। आदमी मशीनगन की आग में भूना जा रहा है, पागल कुत्तों ने मशीनगन चलाना सीख लिया है। सैकड़ों-हजारों-लाखों आदमियों को गोली से बेधकर सुला दिया जायगा, घरों में आग लगायी जायगी पेट्रौल छिड़ककर। तुम्हारी माँ और बहिन की आबरू तुम्हारे सामने लूटी जायगी...तुम मर जाना चाहोगे, रौरव नरक से मुक्ति पाना चाहोगे, आँख मूँद लेना चाहोगे, मौत तुम्हें आसान मालूम पड़ेगी, लेकिन तुम्हें मरने न दिया जायगा, तुम्हारे प्राण तुम्हारे गले में अटका दिये जायँगे, सिर्फ इसलिए कि तुम अपनी आँखों से उन सारी चीजों को परनाले के कीचड़ में लिथड़ता हुआ देखो जिन्हें तुमने अपने मन की पवित्र वेदी पर बैठाला था... और तुम्हें यह देखना होगा, क्योंकि तुमने भेड़िये की सत्ता को चुनौती दी। तुम्हारी आँख के आगे तुम्हारा बच्चा पानी के बिना मरेगा, पानी हाथ-भर की दूरी पर रखा होगा, लेकिन बच्चे को पीने को न मिलेगा, उसके गले में काँटे पड़ जायँगे और वह तुम्हारे सामने तड़प-तड़पकर दम तोड़ देगा और तुम उसे अपनी गोद में भी न ले सकोगे कि अपनी आँख की दो खारी बूँदें ही उसके नन्हें-से मुँह में डाल दो...यन्त्रणाओं का मैनुअल खोलकर भेड़िया तुम्हें दण्ड देगा—

घड़े में बहुत-सी कागज की चिप्पियाँ पड़ी हैं। आँख मूँदकर हाथ डालो और एक चिप्पी निकालो। चिप्पी पर लिखा है दाहिना हाथ। तलवार का वार और दाहिना हाथ तरोई की तरह कटकर अलग। दाँया हाथ डालो। चिप्पी पर लिखा है दाहिनी आँख। संगीन भुँकी और आँख की जगह एक खून से बिजबिज छेद···

(स्मृति से, चीनी यन्त्रणाओं की किताब)

उस समय निर्मम इतिहास तुम से प्रश्न करेगा—अपने भाई पर विश्वास करोगे या नहीं? उसके मन को कुतर-कुतर कर खोखला करनेवाले संदेह के कीड़े को मारोगे या नहीं?

और तब दुःस्वप्न-सी जान पड़नेवाली यन्त्रणाओं की उस घड़ी में तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर देना होगा, क्योंकि इतिहास को ठगा नहीं जा सकता। और वह उत्तर तुम्हें आज देना होगा क्योंकि, यन्त्रणाओं की वही घड़ी है।

आज

जिसमें तुम साँस ले रहे हो।

'हिन्दुस्तान हमेशा से एक और अखंड है। आज जो लोग उसके बँटवारे की बात करते हैं उनके दिल में देश का दर्द नहीं है। हम किसी हालत में भारतमाता के टुकड़े न होने देंगे। जब तक हमारे शरीर में...'

'जरा रुकिए। हिन्दुस्तान से आपका क्या मतलब है? हिन्दुस्तान क्या है?'—सफेद खद्दरधारी नेता की आवाज को चीरती हुई एक बुलंद आवाज आयी—गूँज लिये हुए।

सभा में सबकी नजरें इस बिगड़ेदिल आदमी पर लग गयीं। सब खरमंडल कर दिया। वह एक पचीस-छब्बीस साल का अच्छा, कसीला, गोरा, चिट्टा जवान था—मुसलमान। एक सादा कुरता-पाजामा पहने था। दोनों ही कपड़े फटे थे, पाजामा मोरी पर और कुरता कंधे पर। वह एक सीधे-सादे सवाल की तरह उठ खड़ा हुआ था। उसमें किसी किस्म की कोई झिझक नहीं थी। लोगों की नजरें उस पर लगी हुई थीं, लेकिन इससे उसे कोई सरोकार नहीं था। उस भीड़ में ज्यादातर, लगभग सभी, हिन्दू थे। उनको इस मुसलमान नौजवान का इस तरह सवाल कर बैठना वैसा ही लगा जैसे ऋषि-मुनियों के यज्ञ में राक्षसों का विघ्न डालना। लोग खून पीकर रह गये—कुछ ने आवाजें भी लगायीं, 'बैठ जाइए, बैठ जाइए, आपके सवाल का जवाब दिया जायगा'। भाषण करनेवाले लीडर ने भी उसे बैठ जाने का इशारा किया, लेकिन वह बैठने के लिए नहीं उठा था। वह उसी तरह मूँछों में थोड़ा मुसकराता-सा खड़ा रहा।

उसने कहा सिर्फ इतना कि—आप मेरे सवाल का माकूल जवाब दे लें तो आगे बढ़ें। यह सवाल मेरे अन्दर बहुत दिनों से उठता रहा है। आज मैं यहाँ इसीलिये आया हूँ कि मुझे इस सवाल का जवाब मिल जाय। आप पढ़े-लिखे आदमी हैं, मैं जाहिल आदमी हूँ। सिर्फ उर्दू मिडिल पास हूँ। अब रेशम का काम करता हूँ।'

लीडर अपनी स्पीच के खातमे पर आ रहे थे। इस बेहूदा आदमी ने अपना बेहूदा सवाल पूछकर उनके बोलने में रुकावट डाल दी थी। और वह अपनी स्पीच अपनी मनचाही लफ्फाजी के साथ न खतम कर पाये। नहीं ही कर पाए, सचमुच वह नौजवान बड़ा अड़ियल निकला। लीडर ने अपने मन में कहा—ठीक ही तो कहता है, जाहिल तो है ही। लेकिन जाहिल है तो यहाँ क्यों आता है, और आकर ऐसे बेहूदा सवाल क्यों करता है, अपने घर क्यों नहीं बैठता, कमाये, खाये पिये, मौज करे। राजनीति कोई बच्चों का खेल तो है नहीं कि चले आये और लगे बे-सिर-पैर की हाँकने। इसके लिए तो बड़ी अक्ल चाहिए—

हाँ, अकल तो ज्यादा नहीं है बेचारे के पास। बस इतनी है कि अपना भला बुरा समझ ले। इसीलिए अँग्रेज से उसे इस कदर नफरत है। इसीलिए वह यह चाहता है कि हिन्द का मुल्क हिन्दवालों के हाथ में आये और अंग्रेज यहाँ से अपना मुँह काला करे। हाँ, तो इससे ज्यादा अकल तो सचमुच नहीं है उसके पास। मगर गनीमत यही है कि इस काम में अकल से भी ज्यादा जरूरत है खून को। और भई। जहाँ तक खून का ताल्लुक है, उसमें लीडर साहब से सेर-आध सेर ज्यादा ही खून होगा, कम तो किसी हालत में नहीं। और जहाँ तक उसको उँडेलने का सवाल है, उसमें तो शायद वह और भी शाहखर्च निकलेगा, बिना दूसरी बार सोचे उँडेल देगा अपने दिल का खून वह उस सपने को पूरा करने के लिए जो उसके रग और रेशे में मिलकर एक हो गया है।

इसीलिए तो उसके सवाल के कुछ मानी हैं। यह सवाल उसके दिमाग

की खुजली नहीं है। खुजली पढ़े-लिखे, सफेदपोश लोगों के दिमाग में ही होती है। मेहनत करनेवाले की जिन्दगी में इस तरह की दिमागी खुजली की कहीं जगह नहीं है। यह उसकी जिन्दगी और मौत का सवाल है। इसके जवाब पर उसकी जिन्दगी टँगी है। यह उसकी आत्मा की पुकार है, उसके भीतर से उठनेवाली एक चीख है। यह सवाल उसके ओठों तक आया है तो जैसे उसके अन्दर की एक-एक चीज को झँझोड़ता हुआ, जैसे कोई किसी पतले स्प्रिंग को मुट्ठियों में भरकर उसे तोड़-ताड़ अलग करे! यह सवाल पूछकर उसने आपको वचन दिया है कि अगर आप उसके इस सीधे से सवाल का ऐसा जवाब दे दें कि उसको संतोष हो जाय तो फिर वह आपके साथ है, जंगल में, झाड़ी में, भूख में, प्यास में, लू में, बतास में, जेल में, फाँसी के तख्ते पर और गोलियों की बौछार में और संगीनों की मार में। सौदा बुरा तो नहीं है...लेकिन भई, शर्त यही है कि जवाब माकूल हो। बगलें झाँकनेवाले, सवाल से मुँह चुरानेवाले, उलटी-सीधी उड़ानेवाले, बेपर की हाँकनेवाले जवाब से काम नहीं चलेगा। यह ऐसी किसी पहेली का जवाब नहीं है जैसी अभी पचीस-तीस मिनट पहले मेरे बड़े भांजे ने अपनी छोटी बहन से बुझायी थी—'कटोरे पर कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा।' इस पहेली-बुझौवल की बात और है। इसका जवाब अगर गलत भी हो तो किसी की जिन्दगी का वारा-न्यारा नहीं होना है। पर वह सवाल जो इस नौजवान मुसलमान ने पूछा है, आप भी मानेंगे, उसकी बात और है।

मगर लीडर में गुस्सा ज्यादा है—इस सवाल का सिर-पैर ही समझ में नहीं आता, हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान है, बस। इतना भी तुम नहीं जानते तो हिन्दुस्तान का नक्शा उठाकर देख लो, आप ही सब समझ में आ जायगा। लांगमैन्स का ऐटलस देखने से सारी बात खुद ब खुद समझ में आ जाती है।

पर हाँ, यह मुश्किल तो जरूर है। सब लोग लांगमैन्स का एटलस हर वक्त अपने साथ नहीं रखते कि जहाँ ऐसे किसी सवाल ने तंग किया कि नक्शा जेब से निकाला और सारा मामला साफ।

यह मैं मानता हूँ, महाशयजी, कि सबको अपने साथ लांगमैन्स का एटलस रखना चाहिए। यह राय बहुत माकूल है। मगर एक बात तो बताइए, निकालिए तो अपना लांगमैन्स। हाँ, उसमें देखिए तो, बम्बई कहाँ है? सुना है, वहाँ पर जहाजी सिपाहियों ने (जिनमें सरकार के टुकड़खोर लाल और हरे झण्डेवाले भी थे!) बगावत कर दी थी। सुना है, बम्बई के लाखों मजदूरों, विद्यार्थियों और शहरी जनता ने कई दिन तक सड़कों पर मोर्चेबन्दियाँ करके लड़ाई लड़ी...तब मुसलमान खून भी कुछ कम न बहा...लेकिन इन मुसलमानों की तो तुम बात न करो! यह लोग बहुत अजीब होते हैं! कभी-कभी वह यों ही शौकिया खून बहा चलते हैं—जरूरत से ज्यादा हो जाता होगा, नहीं भला वह सब आजादी के लिए एक कतरा खून भी कभी बहा सकते हैं! अरे राम का नाम लो।

तब सड़कें लाशों से पट गयीं, खून से जमीन लाल हो गयी, दूध के लिए लाइन में खड़े बच्चे सीने में एक गोली दबाकर वहीं सो गये—बहुत बचपन की एक बात याद आती है जो मैंने अपनी आँखों देखी थी। एक कुत्ते की मौत, जो सो रहा था और सोते में ही जिसे गोली मार दी गयी थी। नींद से वह चौंका, बहते हुए खून की धार से लकीर बनाता हुआ वह थोड़ा दूर उठकर भागा, लेकिन एक छोटा-सा घेरा बनाकर वहीं ढेर हो गया, और मौत की बदबू सारी जगह फैल गयी। अब इन्सान के बच्चों को वही मौत मिलती है जो पहले कुत्ते के बच्चों को मिलती थी। समय का फेर कहना चाहिए इसे। चौतरफा मँहगी के इस जमाने में आखिर एक चीज तो सस्ती होनी ही चाहिए थी......

बंगाले के शहर कलकत्ता का भी नाम सुना होगा आपने। हाँ, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ आपके लांगमैन में भी कलकत्ता मिल जायगा। वहाँ भी ऐसी ही कोई बात हुई थी। और दिल्ली—जी हाँ, वही पहले का

हस्तिनापुर—ग्वालियर वगैरा भी कुछ जगहें हैं जिनका हवाला आपको मिल जायगा। हाँ, फिरंगी की तोप के मुहाने इतने चौड़े थे कि दोनों भाइयों को अपने सीने अड़ाने पड़े थे…हाँ, हाँ, अपनी मरजी से, कोई मजबूरी थोड़े ही थी……हाँ, यह आप ठीक कहते हैं, उसमें कुछ रस जरूर मिलता होगा, मिलता है……

दालमंडी में वह दूकान है। बिसातखाने की खासी बड़ी दूकान है। सुलतान साहब ने मुझे ले जाकर उसके मालिक से मिलाया। अशफाक अच्छा आदमी है। वह तीस-बत्तीस का होगा। गेहुँआँ रंग, या उससे कुछ कम साफ, मामूली कसा हुआ जिस्म, कमीज-पाजामा पहने, मामूली पढ़ा-लिखा, दुनिया की खबर रखने की कोशिश करता है। और मैं बात को बढ़ाकर बिलकुल नहीं कहना चाहता और न किसी को धोखे में रखना चाहता हूँ। अशफाक की आँखों से इनकलाब की चिनगारियाँ नहीं निकलतीं। उसमें ऐसी कोई चीज नहीं है जो बरबस आपको अपनी तरफ खींच सके। निहायत मामूली, सादा-सा आदमी है। अपने बीवी-बच्चों में शायद पूरी तरह रमा हुआ है, जिन्दगी का मोह भी कम नहीं है उसे, लेकिन इतना तय है कि देश की पुकार आने पर वह लिहाफ ओढ़कर नहीं सो जायगा और न इतर की शीशी की डाट अपने कान में खोंसकर यही कहेगा कि मुझे कोई आवाज नहीं सुन पड़ती। मैंने अशफाक से बात शुरू की—कितना अच्छा हुआ कि किसी एक सवाल पर तो हिन्दू और मुसलमान एक हुए।

—हाँ, अच्छा तो हुआ।

—बड़ी दबी जबान से कहा आपने।

—सचमुच क्या यह कोई बहुत बड़ी चीज हुई?

—रोटी के सवाल पर हिन्दू और मुसलमान एक साथ आगे बढ़े, यह कोई छोटी बात तो नहीं है।

—लेकिन क्या हुआ? कोई नतीजा निकला?

—नतीजा इतनी आसानी से थोड़े ही निकलता है।

—मेरा मतलब उस नतीजे से नहीं था। मेरा मतलब इससे था कि क्या हिन्दू और मुसलमान पास आये?

—वह भी इसी तरह धीरे धीरे होगा।

—मुझे तो वह दिन पास आता नहीं दिखायी देता।

—आप बहुत मायूस हैं।

—मेरी आँखों में जिन्दगी की तस्वीरें घूम रही हैं। उन्हीं ने, मुमकिन है, मायूसी का आँजन लगा दिया हो।

और वह मुस्कराया। उसकी मुस्कराहट हँसने से ज्यादा रोने के पास थी।

मैंने बात को हलका करने के लिए कहा—इतनी जल्दी धीरज खोने से काम न चलेगा।

—धीरज न खोऊँ? यह कैसे मुमकिन है। जितनी बार किसी अँग्रेज को शान के साथ सिर उठाये, गले में माला डाले, किसी रँगी-चुँगी हिन्दुस्तानी लड़की को साथ लिये इधर से जाते देखता हूँ उतनी बार धीरज हाथ से छूट जाता है, और मैं अपने को ही कोसता हूँ, गाली देता हूँ, क्योंकि और कुछ नहीं कर सकता...बस यही जी होता है कि सिर के तमाम बाल नोच डालूँ।

—क्या होगा तब?

—हो चाहे जो, वह सवाल ही दूसरा है। मैं भी जानता हूँ कि जब तक हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे का सर फोड़ेंगे तब तक कुछ नहीं हो सकता, कुछ भी नहीं। यह मैं खूब जानता हूँ। लेकिन इस वक्त मैं उस बात पर बहस न करूँगा।

उसका चेहरा दबे हुए गुस्से से स्याह पड़ने लगा।

—मैं समझता हूँ कि आपस के शक-शुबहे दूर हो जायँगे तो—

उसने बीच में ही बात काटते हुए कहा—जी हाँ, वह बहुत बड़ा 'तो' है...बन्द दरवाजे खटखटाने से खुल जाते हैं, लेकिन जब इन्सान

के दिलों के दरवाजे बन्द होते हैं तो दिलों के दरवाजे खुलवाना जरा टेढ़ी खीर है।

मैंने उसे और खुलवाने के लिए अनजान बनते हुए पूछा—मैं आप का मतलब नहीं समझा।

—हिन्दुओं के दिलों के दरवाजे हमारे लिए बन्द हो चुके हैं।

—आपने खटखटाकर देखा?

—ज्यादा नहीं...जरूरत भी नहीं समझी।

—जरूरत भी नहीं समझी?

—नहीं। ताली एक हाथ से नहीं बजती।

—दूसरा हाथ भी तो यही कहता है।

—यही तो लुत्फ है। दो हाथ आपस में लड़ रहे हैं।

वह दूसरी बार उसी दर्द भरे-ढंग से मुस्कराया, फिर थोड़ा तनते हुए बोला—मुसलमान कमीना नहीं होता। मुसलमान का दिल बहुत बड़ा होता है। उसमें नफरत के लिए जगह नहीं है। आप एक कदम आगे बढ़िए तो वह दस नहीं, सौ कदम आगे बढ़कर मिलने के लिए तैयार है।

मैंने कहा—यह कहना बहुत आसान है।

उसने अपने को गोया अन्दर सिकोड़ते हुए कहा—यह लीजिए, बात और साफ हो गयी। अभी की अभी। हमें अब एक दूसरे की जबान पर एतबार नहीं रहा। और तब भी लोग कहते हैं कि हमारी एक में निभ जायगी। इस वक्त यह गैरमुमकिन है। जो हमें मवेशियों से भी गया-बीता समझता हो उसके साथ हमारी कैसे निभ सकती है...

—मवेशियों से भी गया-बीता?

—जी हाँ, मुसलमान का साया पड़ जाने से हिन्दू का खाना खराब हो जाता है, उसका जिस्म छू जाने से हिन्दू को नहाना पड़ता है। गोया मुसलमान हर वक्त गिलाजत में लिपटा रहता हो। हिन्दू पौसरे पर मुसलमान को चुल्लू से पानी भी नहीं पिलाया जाता, उसके लिए दरकों का इन्तजाम

है। ठरका आप जानते हैं किस चीज को कहते हैं?......लानत भेजता हूँ उस दोस्ती पर जिसमें कदम-कदम पर......

और फिर वह अपने खरीदारों की तरफ मुखातिब हो गया। मैं चलने लगा, तो उसने कहा—फजूल का दर्द सर आपने मोल लिया है बाबू साहब! इससे कुछ होने-जाने का नहीं। क्यों नाहक अपनी जिन्दगी बरबाद करते हैं? नासूर बहुत भीतर तक असर कर गया है। हिन्दू जबानी तौर पर मुसलमान को अपना भाई कहता है। वाकई वह उसको अपना भाई समझता नहीं। नहीं, मेरे दोस्त, नहीं। तुम मुझे लाख समझाने की कोशिश करो, मेरी दिलजमई न होगी।

वह फिर मुसकराया, गहरी निराशा की अपनी मुसकराहट। म्यान से जैसे एक अविश्वास की तलवार निकली और आखरी बार अपनी डरावनी चमक दिखलाकर फिर म्यान के अन्दर चली गयी। मेरी तुरन्त यह ख्वाहिश हुई कि इस वक्त वह खद्दरधारी लीडर भी यहाँ होते!

वह होते तो अशफाक की मुसकराहट उन्हें इस बात के लिए कोंचती कि वह लॉगमैन्स के ऐटलस को परे सरकाकर यह बतलाने की कोशिश करें कि हिन्दुस्तान क्या है!

हिन्दुस्तान क्या सिर्फ यहाँ की नदियों, नालों, पहाड़ों और टीलों का नाम है? गांवों और शहरों, सड़कों और गलियों और ईंट और चूने और कंकरीट का नाम है?

सबसे पहले हिन्दुस्तान से मुराद यहाँ के रहनेवालों से है। हिन्दुस्तान का मतलब है हिन्दुस्तानियों का धरती की तरह फैला हुआ चौड़ा दिल। यही दिल हिन्दुस्तान है। इसी दिल को गौर से देखना होगा। क्योंकि वही तो हिन्दुस्तान है।

ज्यादा गौर से देखने की, खुर्दबीन लगाकर देखने की जरूरत नहीं है। बिना खुर्दबीन के ही पता चल जाता है कि इस धरती में जो कि हिन्दुस्तान का दिल है, बड़ी चौड़ी-चौड़ी और गहरी-गहरी दरारें पड़ी हुई हैं।

जिसे आँख नहीं है, वह भी उस पर चलकर जान सकता है। क्योंकि पैरों को उन दरारों का खुरदरापन मालूम हो जाता है। हाँ, हवा में उड़ने से इन दरारों का पता नहीं चलता। क्योंकि तब पैर हवा में होते हैं, उस धरती पर नहीं होते जो एक चौड़े दिल की बनी है, जिसे हिन्दुस्तान कहते हैं।

लीडर गरजते हैं—हिन्दुस्तान एक और अखंड है। एक हिन्दुस्तानी बहुत अदब के साथ पूछता है—कहाँ है आपका वह एक और अखंड हिन्दुस्तान? लांगमैन्स के ऐटलस में? प्रायमरी स्कूल की दीवारों पर बने मानचित्रों में? भारत-माता मन्दिर में? हाँ! वहाँ तो वह जरूर एक और अखंड है। एक ही कागज पर पूरे हिन्दुस्तान का नक्शा छपा है...लेकिन उन नक्शों के बाहर भी है कहीं एक और अखंड हिन्दुस्तान? लीडर फिर गरजकर कहता है—है।

वह अदना-सा हिन्दुस्तानी किसी के गरजने से रोब में नहीं आता। वह उसी अदब के साथ कहता है—यों तो हुजूर की जबान के आगे खंदक भी कोई चीज नहीं है, लेकिन दिलों में अगर दरारें पड़ी हुई हैं तो हिन्दुस्तान की अखंडता की बात महज जबानदराजी है। इनसान का दिल ही वह असली धरती है जिसमें कभी न कुम्हलानेवाले फूल खिलते हैं, जुही और चमेली और गुलाब से ज्यादा खुशबूदार, ज्यादा रंगीन—आजादी और इनसानी खुशी के फूल। यह दिल अगर फटा है तो धरती को जोड़कर साथ रखने से कुछ नहीं होगा। आजादी का फूल नहीं खिलेगा उसमें। वह दूसरी ही धरती और दूसरी ही आबहवा में खिलता है।

हर शख्स के दिल में नफरत के घरौंदे हैं। उन्होंने ही हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े कर रखे हैं। वह जो एक गहरी स्याह लकीर दिल में खिंच गयी है, वह असलियत में हिन्दुस्तान की सरजमीन पर सिर उठाये चीन की दीवार है।

इस वक्त पहला सवाल हिन्दुस्तान को अखंड रखने का नहीं है। पहला सवाल है नफरत के घरौंदों को ढहाने का और उस धरती-से दिल को एक करने का जो एक नहीं है, लेकिन जो हिन्दुस्तान है, जिसका नक्शा न लांगमैंस के ऐटलस में मिलता है और न स्कूल की दीवारों पर।

गरमी सख्त पड़ रही है, न आदमी को चैन है, न मवेशियों को, न पेड़ को चैन है ,न पत्तों को, न ताल को, न तलैयों को।

तलैया सूख गयी है। एक बूँद पानी उसमें नहीं है। तलहटी की काली धरती फट गया है। चार-चार इंच गहरी दरारें हैं। पानी चाहिए, पानी।

लेकिन शायद मुझसे गलती हुई। पानी से अब काम नहीं चलेगा। धरती को शायद अब खून से सींचना होगा—दरारों को आदमखोर के खून से भर दो...

[नया हिन्द, अप्रैल, '४७]

विलायती शराब

मिस्टर चैटर्जी ने सिगार मुँह से निकालकर, मुस्कराते हुए अँग्रेजी में कहा—सफर में ऐसे साथी बड़ी किस्मत से नसीब होते हैं।

मिस्टर चैटर्जी की बात से हमपर एक एक बोतल का नशा चढ़ गया—अच्छा तो हम भी कुछ हैं!

मिस्टर चैटर्जी की बात के जवाब में हमने वही कहा जो कि उस मौके के लिए मुनासिब था; और इस तरह हम सबने एक दूसरे की संगत से अपने को दुनिया का सबसे चोखे भाग्यवाला आदमी समझा।

बम्बई मेल के इस सेकेण्ड क्लास में आठ आदमी थे। हमारा डब्बा साफ-साफ दो बस्तियों में विभाजित था, गोरी बस्ती और काली बस्ती। गोरी बस्ती से फिलहाल हमें कोई सरोकार नहीं।

काली बस्ती में थे मिस्टर चैटर्जी, दोहरे बदन के थुलथुल इन्सान, बारीक खद्दर का 'पंजाबी' और शान्तिपुरी धोती पहने, मुँह में एक बड़ा-सा कीमती सिगार लगाये। सिगार पीने और अपनी शीरीं जुबान से बीच-बीच में थोड़ा काम ले लेने के अलावा वह पूरे वक्त पेरिस के नैश जीवन के बारे में एक उपन्यास पढ़ते रहे।

काली बस्ती ही में थे मिस्टर चोपड़ा, पंजाबी, बम्बई रहते हैं, तसवीरें बनाते हैं, कुछ ही दिनों में उनकी एक नयी तसवीर रिलीज होनेवाली है। उम्र चालीस के आसपास होगी। चेहरे-मोहरे से विशुद्ध पंजाबी हैं। सफेद पतलून और राख के रंग की बुश शर्ट पहने हैं। पूरे बर्थ पर

आप ही की खेस बिछी हुई थी और डब्बे में दाखिल होने पर आप ही की इजाजत लेकर बर्थ पर बैठते हुए मेरा परिचय सबसे पहले आप ही से हुआ। आप ही ने फिर मिस्टर चैटर्जी से मेरा परिचय कराते हुए बतलाया था कि मिस्टर चैटर्जी प्रसिद्ध राष्ट्रीय अँग्रेजी दैनिक...के विश्वविख्यात सम्पादक और मालिक मिस्टर...के दाहिने हाथ हैं।

काली बस्ती के तीसरे अधिवासी थे एक उड़िया दैनिक के यशस्वी सम्पादक श्री नवपात्र। सम्पादकों के किसी सम्मेलन के सिलसिले में बम्बई गये थे, उल्लू बनकर आ रहे थे, बिलकुल पोली चीज थी, निरी ढपोरसंख।

काली बस्ती के चौथे व्यक्ति के बारे में अगर मुझे कुछ न कहना पड़े तो कृतज्ञ होऊँगा।

नवपात्रजी की उम्र तीस के आस-पास ही रही होगी, लेकिन साहित्य पेशा खराब है, बेरहम है, यह उनकी शकल से जाहिर था। उनके तमाम चेहरे में उनके गाल की उभरी हुई हड्डियाँ ही सबसे पहले दिख जाती थीं।

नवपात्रजी की तबियत भी इस वक्त कुछ बुझी-बुझी-सी थी। शायद इस वजह से कि बाहर पानी गिर रहा था।

मिस्टर चोपड़ा ने चुटकी ली—क्या बात है, बहुत उदास-उदास-से दिख रहे हैं, किसी की याद आ रही है क्या?

नवपात्रजी ने थोड़ा झेंपते हुए कहा—अजी, याद आने की आपने एक ही कही!

मिस्टर चोपड़ा ने आँखें कुछ इस भाव से नचायीं कि मैं सब समझता हूँ और बोले—बड़ी जालिम बारिश हो रही है मिस्टर नवपात्र, कहिए तो दूँ कुछ।

मिस्टर नवपात्र अपने भोलेपन का इजहार करते हुए मुँह बाकर जिज्ञासा की मुद्रा में चोपड़ा की तरफ देखने लगे।

चोपड़ा ने जैसे उनके भोलेपन पर तरस खाते हुए अपनी बात साफ की—अरे यही, पीने-वीने के लिए कुछ...

नवपात्र ने कहा—थैंक्स, मैं पीता नहीं।

चोपड़ा ने कहा—आप पीते नहीं हैं या आपने कभी पी नहीं है?

नवपात्र ने कहा—मैंने कभी पी नहीं है और पीने की कुछ खास इच्छा भी नहीं है।

चोपड़ा ने कहा—कुछ खास नहीं, मगर थोड़ी-सी तो होगी ही।... अभी तो मेरे पास व्हिस्की और ब्रैण्डी के अलावा और कुछ नहीं है। कहिए तो व्हिस्की दूँ।

ऊपर की बर्थ से मिस्टर चैटर्जी बोले—मिस्टर चोपड़ा, उनको व्हिस्की नहीं, ब्रैण्डी दीजिए, दिल किसी वजह से उदास हो रहा हो तो उसे बस में करने के लिए ब्रैण्डी से बढ़कर कोई चीज नहीं।

यह परामर्श देकर मिस्टर चैटर्जी ने फिर अपने मन को पेरिस के नैश जीवन में निविष्ट किया।

मिस्टर नवपात्र हल्के-हल्के, तकल्लुफाना ढंग से इन्कार करते ही रहे और एक गिलास में थोड़ी-सी ब्रैण्डी उनके हाथों में पकड़ा दी गयी। दो-एक बार नवपात्रजी ने मुँह बिचकाया और फिर स्वाद ले-लेकर पीने लगे।

चोपड़ा ने कहा—बहुत अच्छी चीज है यह, बहुत सेहतबख्श। मैं हमेशा अपने साथ रखता हूँ।

फिर वह मेरी तरफ मुड़े और मुझे पीने की दावत दी। मैंने अपनी मजबूरी उन पर जाहिर कर दी। तब उन्होंने पूछा कि क्या मुझे बियर से भी परहेज है। मैंने कहा—जी हाँ, मैं बियर भी नहीं पीता।

चोपड़ा—मगर बियर में तो ऐलकोहल नहीं के बराबर होता है।

मैं—तो भी क्या हुआ। मेरी तबियत न जाने क्यों उधर से बहुत भागती है।

तब मिस्टर चोपड़ा ने कुछ खीझ और कुछ ताने के स्वर में कहा—लाइमजूस कॉर्डियल से तो आपको परहेज नहीं है न!

मैंने कहा—जी नहीं, लाइमजूस मैं बहुत शौक से पीता हूँ।

मिस्टर चोपड़ा पढ़े-लिखे आदमी थे। थोड़ी देर तक खामोशी के साथ सिगरेट पीते और कुछ सोचते रहे। फिर बोले—मेरी एक तसवीर जल्द ही रिलीज होनेवाली है।

मैंने उत्सुकता से भरते हुए कहा—अच्छा !...लेकिन एक बात कहूँ, अगर आप बुरा न मानें...

चोपड़ा ने कहा—इसमें बुरा मानने की तो खैर, कोई बात ही नहीं। मगर मैं ही क्यों न कह दूँ वह बात आपकी तरफ से। आप यही कहना चाहते हैं न कि आजकल सभी तसवीरें एक दूसरे का जूठन होती हैं—किसी में कोई नयापन नहीं होता, गोया सिनेमाई दुनिया को भी हकीम लुकमान का कोई नुस्खा मिल गया हो। आप यही कहना चाहते थे न ?

—जी।

—मैं आपकी राय से बिलकुल इत्तफाक करता हूँ......मगर मैं समझता हूँ कि अपनी इस नयी तसवीर में मैंने एक नयी बात कहने की कोशिश की है।

—तब मैं उसे जरूर देखूँगा।

—जी हाँ, देखिएगा।...मैंने उसमें यह दिखलाने की कोशिश की है कि गरीब और अमीर में जमीन और आसमान का फर्क होता है और अमीर आदमी के लिए जब तक कि वह अमीर है, यह गैरमुमकिन है कि वह अपने गरीब दोस्त की तकलीफ समझ सके। वह लाख कोशिश करे, सिर पटककर मर जाय, लेकिन वह चीज उसकी समझ ही में नहीं आ सकती।...मैं समझता हूँ कि मैंने एक सही बात कही है।

तब तक मैहर का स्टेशन आ गया था। मिस्टर चैटर्जी भी अपनी ऊपरवाली बर्थ से नीचे आये और हम चारों लोग नीचे उतरे।

हम लोगों ने प्लेटफार्म के दो-चार चक्कर लगाये, दस मिनट हो गये, मगर गाड़ी चलने का नाम ही न लेती थी। हम लोगों का माथा ठनका। इस स्टेशन पर इतना क्यों रुक रही है—इतना तो कभी रुकती नहीं। जाकर स्टेशन मास्टर से पूछा तो मालूम हुआ कि आगे चलकर

थोड़ी दूर पर रेलवे लाइन खराब हो गयी है, कल घनघोर बारिश हुई थी न। लिहाजा गाड़ी को काफी देर रुकना पड़ेगा।

छ के पड़े-पड़े नौ बज गया। लेकिन गाड़ी चलने का नाम ही न लेती थी। जब पूछने जाइए तो यही पता चलता कि अभी कोई खबर नहीं आयी है। यह भी हो सकता है कि अभी फौरन खबर आ जाय और नहीं तो यह भी मुमकिन है कि आप लोगों को रात-भर यहीं पड़ा रहना पड़े।

चोपड़ा ने चैटर्जी से खीझकर कहा—रेलगाडी में बड़ा वक्त खराब होता है।

चैटर्जी ने उनकी बात की ताईद की—अब देखिए न, मगर रास्ता भी क्या है!

चोपड़ा—एयर के लिए पैसेज जो नहीं मिलता।

चैटर्जी—वर्ना फ्लाइ करना वाकयी बहुत इकोनामिकल होता है।

मैं ही शायद इन तमाम लोगों में सबसे ज्यादा बुद्धू था! मैंने पूछा—कितना लगता है?

मिस्टर चैटर्जी ने कहा—फर्स्ट क्लास से थोड़ा ज्यादा।

मैंने कहा—तब तो कुछ भी नहीं लगता।

तब मिस्टर चैटर्जी ने हम लोगों को बतलाया कि उनके अखबार के पास अपना हवाई जहाज है, दूर के शहरों में अखबार वक्त से पहुँचाने के लिए। और जब वह कलकत्ता नहीं, इलाहाबाद रहते थे तब अकसर लखनऊ से इलाहाबाद और इलाहाबाद से कलकत्ता तक फ्लाइ करते थे। उन्हीं से मुझको मालूम हुआ कि इलाहाबाद से कलकत्ता दो घण्टे का रास्ता है।

और तब मिस्टर चैटर्जी ने कहा—ऐसा तो कभी जमाना ही नहीं देखा गया कि आप चीज के लिए पैसा लिये खड़े हैं, लेकिन चीज नहीं मिलती। एयर का पैसेज आसानी से मिल जाया करता तो बहुत झंझट से बच जाते।

अब दस बज गये थे, लेकिन गाड़ी में कहीं कोई हरकत न थी।

तब मिस्टर चैटर्जी ने सुझाव रखा कि अब काफी वक्त हो गया है, हम लोगों को चलकर डाइनिंगकार में खाना खा लेना चाहिए।

डाइनिंगकार में जाकर हम लोग बैठे। बैरा ने आकर मेज सजानी शुरू की। न जाने कितने तरह के काँटे और छुरियाँ एक के बाद एक मेज पर स्थान पाने लगीं। वे काँटे और वे छुरियाँ सूक्तियाँ थीं जिनका भाष्य मेरे लिए जरूरी था। मिस्टर चैटर्जी और मिस्टर चोपड़ा दोनों ही ने बारी-बारी से मेरी मूर्खता भङ्ग करने की कोशिश की। उन दोनों को छुरी-काँटे के इस्तेमाल मे कमाल हासिल था, गोया वे भी उनकी उँगलियाँ ही हों। वे तो यह तक जानते थे कि बैरे की पलेट में से अपनी पलेट में चीजें कैसे और कितनी निकालनी चाहिए।

खाते वक्त बड़ा मजाक रहा। तरह-तरह की बातें हुई। खुदा का शुक्र है किसी तरह खाना खत्म हुआ तो मिस्टर चैटर्जी की तरफ से सुझाव आया कि शेरी मँगायी जाय और उसमें मैं भी शिरकत करूँ।

'एक अच्छे डिनर के बाद शेरी क्या मजा लाती है, यह लफ्जों में बयान करने की चीज नहीं है जनाब...चखना तो आपको पड़ेगा ही, हमारी खातिर ही सही।'—मिस्टर चैटर्जी ने मुस्कराते हुए कहा।

बैरा को बुलाकर शेरी लाने के लिए कहा गया तो मालूम हुआ कि शेरी नहीं है। इस तरह मेरी शिरकत की बात तो आप ही आप कट गयी। लेकिन खैर, कोई ड्रिङ्क तो आना ही चाहिए, वर्ना खाना ही नहीं कहलाया। लिहाजा मिस्टर चैटर्जी ने बैरा को वरमुथ लाने के लिए कहा।

वरमुथ आयी और चैटर्जी और चोपड़ा ने आठ-आठ दस-दस बूँदों की चुसकियों में पीना शुरू किया। चोपड़ा तो उसी वरमुथ से संतुष्ट हो गये, मगर चैटर्जी साहब ने दो पेग व्हिस्की भी मँगायी। अगाड़धत्त पीनेवाले थे, नशा उन पर क्या चढ़ता, उल्टे वह नशे पर चढ़े रहते; लेकिन हाँ, तबियत में सुरूर जरूर आ गया था। मेरी ओर मुखातिब होकर बोले—मैं जब आपकी उम्र का था, तो मैंने भी स्वदेशी में बहुत काम

किया है। सन् इकतीस में मैं जेल भी गया था।...मगर अब उस सबमें नहीं रहता। इन्सान को यह जिन्दगी शान के साथ खाने-पीने के लिए मिली है। यही असल जिन्दगी है, बाकी सब बेकार के बखेड़े हैं।

तब तक बिल आ गये थे। चारों आदमियों के बिल अलग-अलग आये थे। मिस्टर चेटर्जी ने सबके बिल बटोरकर अपने आगे रखते हुए और जेब से पर्स निकालते हुए अँग्रेजी में कहा—आज मुझे सबकी ओर से बिल चुकाने का सौभाग्य प्रदान कीजिए।

सबने उनकी इस बात का बहुत शिष्ट शब्दावली में प्रतिवाद किया, मगर वह माननेवाले कब थे, दस-दस के दो नोट और एक पांच का नोट बैरा की तश्तरी में रखते हुए बोले—ऐसे मौके जिन्दगी में कब-कब आते हैं मिस्टर चोपड़ा। सफर में ऐसे साथी बहुत भाग्य से ही मिलते हैं।

बैरा कुछ रुपये वापस लाया जिनमें से एक उसी की जेब में गया और बाकी चैटर्जी की, और हम लोग डाइनिंगकार से निकले। मिस्टर चोपड़ा अपनी मैकोपोलो सिगरेट और मिस्टर चैटर्जी अपना नौ इञ्च लम्बा सिगार निकालकर जला चुके थे।

गाड़ी के चलने के लक्षण अब भी कुछ खास नहीं थे, लिहाजा हम लोग पलेटफार्म पर चहल-कदमी करने लगे।

मिस्टर चोपड़ा ने उड़िया साहित्यकार नवपात्रजी से कहा—मैं समझता हूँ कि आप अविवाहित हैं।

नवपात्रजी ने हामी भरी।

मिस्टर चोपड़ा ने रहा कसा—तभी आप इतने दुबले हैं। शादी कर लीजिए तो आपकी सेहत ठीक हो जाय।

नवपात्रजी मुस्कराये।

चोपड़ा ने कहा—मजाक नहीं, सच कहता हूँ।

नवपात्रजी ने भी गंभीरता से कहा—शादी तो मैं भी करना चाहता हूँ, लेकिन किससे करूँ?

चोपड़ा ने मजाक किया—लड़की से।

नवपात्रजी भी थोड़ा मुस्कराये और बोले—वही तो नहीं मिलती। अब यों ही जिस किसी लड़की से तो नहीं कर सकता, शिक्षा और संस्कार और रुचियों आदि का कुछ मेल तो जरूरी है न, या आप यह नहीं मानते?

नवपात्र ने यह सवाल किसी एक खास आदमी से नहीं किया था—वह शायद किसी को संबोधित करके नहीं कहा गया था और सबको संबोधित करके कहा गया था, शायद अपने आपको भी।

दो पेग व्हिस्की और एक पेग वरमुथ काफी होता है। मिस्टर चैटर्जी अपने सिगार के धुएँ में न जाने किन आकृतियों की खोज कर रहे थे। सोमरस का हलका-हलका-सा नशा था, मुँह में सिगार लगा हुआ था, उनकी तबियत इस वक्त बहुत अच्छी थी, उनका चेहरा खुशी से जगमगा रहा था। चोपड़ा और नवपात्र की बातचीत का पूरा रस लेते हुए भी वह अपने आपको एक तरह से उससे अलग किये हुए थे।

नवपात्र के शब्द उनको अपने उस स्वप्नलोक में भी सुन पड़े और उनका दो पेग व्हिस्की और एक पेग वरमुथ का नशा हिरन हो गया, चेहरे की जगमगाहट काफूर हो गयी, जैसे चाँद पर बादल का एक टुकड़ा आ गया। नवपात्र ने एक तेज छुरे से एक बार में मिस्टर चैटर्जी के मुँह पर पड़े हुए आत्मसन्तोष के नकाब को बेदर्दी से चीरकर नकाब उलट दिया था।

मिस्टर चैटर्जी ने सिगार मुँह से निकालते हुए एक व्यथित मुसकराहट के साथ अँग्रेजी में कहा—तब आपको जन्मजन्मान्तर तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, मिस्टर नवपात्र।...

बादल का टुकड़ा मिस्टर चैटर्जी के मुखचन्द्र पर अचल होकर बैठ गया था।

'मन के अनुकूल लड़की आपको नहीं मिलेगी—यह इस युग का अभिशाप है।'

फिर अपनी संस्कृति के प्रतिकूल, आवेश में आकर चीत्कार-सा करते हुए बोले—मुझे बताइए, कहाँ है हमारे समाज की लड़कियों में शिक्षा और

संस्कार और कहाँ है रुचियों का मेल !...मेरी पत्नी बिलकुल अपढ़ है। मैं आज तक यही नहीं जान सका कि उससे क्या बात करूँ।...दस साल से हमारा दाम्पत्य जीवन खत्म है। क्लब से रात के ग्यारह, बारह, एक बजे घर पहुँचता हूँ, वह सो गयी रहती हैं और जागती भी रहें तो क्या फर्क पड़ता है...मैं भी सो जाता हूँ। सवेरे नाश्ते के वक्त जो मुलाकात होती है उसी में जो दो-चार बातें होती हैं, बस वही होती हैं, लेकिन उसमें भी अकसर गिन्नी का रोना सुनने को मिलता है, आज यह नहीं है तो कल वह नहीं है, आज नौकर भाग गया है तो कल फलाँ चीज उठ गयी है, आज कोची...कोची मेरा लड़का है, आठ-नौ साल का, मेरे वैवाहिक जीवन का प्रमाण पत्र...'

एक खिन्न-सी मुस्कराहट उनके चेहरे पर खेल जाती है। 'हाँ तो आज कोची बीमार है तो कल उनकी तबियत खराब है...मेरे पचासों दोस्त हैं, कलकत्ता के तमाम बड़े लोग मेरे मिलने-जुलनेवाले हैं, लेकिन मैं अपनी पत्नी को लेकर कहीं नहीं आ-जा सकता...मैं अगर कभी कोई तसवीर भी देखने जाता हूँ तो अकेले...'

फिर थोड़ा रुककर गोया साँस ली और अपनी बात खत्म करते हुए बोले—मिस्टर नवपात्र, लाइफ इज़ नॉट वर्थ अ थ्रेनी, द प्राइस ऑव् द बुक आइ ऐम रीडिंग, नाट ईविन वर्थ अ चीप नॉवेल, माई गॉड !*

इस वक्त किसी के मुँह पर हँसी या मुस्कराहट नहीं थी। सबके चेहरे संजीदा थे। शायद चोपड़ा और नवपात्र भी मेरी ही तरह स्तब्ध होकर मिस्टर चैटर्जी को तक रहे थे—क्या यह वही मिस्टर चैटर्जी हैं जो अभी थोड़ी देर पहले हवाई जहाज के सफर और शराब की किस्मों के बारे में बात कर रहे थे और हँसी के फौवारे छोड़ रहे थे!

कोई पचास सेकण्ड का वक्त गुजरा होगा, तब तक हमने देखा, हमारे

---

* जिन्दगी बहुत गयी-गुजरी चीज है—एक चवन्निहे उपन्यास से भी उसका मोल कम है, एक चवन्निहे उपन्यास से भी कम, हे ईश्वर!

परिचित मिस्टर चैटर्जी हमारे सामने खड़े थे—आत्म-सन्तोष और आभि-जात्य की मूर्ति। अपना चिरा हुआ नकाब उन्होंने जोड़-जाड़कर फिर अपने चेहरे पर डाल लिया था। सिगार लगा हुआ था, मुँह पर मुस्कराहट खेल रही थी। बोले—मगर आप भी अजब आदमी हैं, मिस्टर नवपात्र! कहाँ तो हमारा वह ठाठदार डिनर और कहाँ यह......आपको ऐसी बात नहीं करनी चाहिए, मिस्टर नवपात्र, इट स्पॉयल्स द टेस्ट!

मिस्टर चैटर्जी ठीक कहते हैं, शेरी बहुत अच्छी चीज है, उससे मुँह का स्वाद नहीं बिगड़ता!

[आजकल, विशेषांक '४७]

उमा, प्रिय,

तुम्हें यह खत मैं इलाहाबाद से लिख रहा हूँ, लेकिन यह इलाहाबाद वह नहीं है जिसे तुम जानती हो। दो रोज हुए उस इलाहाबाद की मौत हो गयी। मेरे यहाँ पहुँचने के पहले उसका जनाजा निकल चुका था।

यह नहीं कि भूचाल आया और शहर के सारे मकान ढह पड़े, सड़कें फट गयीं और पानी निकल आया और जहाँ पहले ठोस धरती थी, वहाँ अब पानी लहरें मारने लगा। नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, सभी मकान अपनी जगह पर बदस्तूर कायम हैं और सड़कें फासले को कम करने की कोशिश में शहर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ रही हैं, हस्ब-मामूल, बेतहाशा, लेकिन कम नहीं कर पातीं फासले को...

मकान और सड़कें सभी साबिकदस्तूर हैं, लेकिन तुम्हारा पहचाना हुआ इलाहाबाद मर चुका है, गोकि उसके रहनेवाले अभी जिन्दा हैं और इंसान के चेहरे बहुत कुछ वैसे ही हैं जैसे कि तुमने देखे थे; उनमें सिर्फ एक थोड़ा-सा घुमाव है, जैसे किसी ने शिकंजे में कसकर एक ओर को थोड़ा-सा फेर दिया हो, लेकिन किस ओर को और कैसे, यह सब कुछ पता नहीं चलता...

...मगर फिर भी इन्सान के चेहरे बहुत कुछ वैसे हैं जैसे कि तुमने देखे थे, लेकिन तब भी शहर वह नहीं है, लोग वह नहीं हैं। मगर तुम मेरी बात को कहीं गलत न समझ बैठना। मैं यह नहीं कहता कि

उस इलाहाबाद में जो कि मर चुका है, घी-दूध की नदियाँ बहती थीं और लोग पूरे वक्त हँसते-गाते और रंगरलियाँ मनाते थे, मखमल और कमखाब पहनते थे और छत्तीसों व्यञ्जन खाते थे। नहीं, उस इलाहाबाद में भी लोग फटे चीथड़े लगाये घूमते थे और जो हाथ लग जाय, उसी से पेट की आग बुझाने की कोशिश करते थे। उस इलाहाबाद में भी ज्यादातर लोग जिंदगी से बेजार थे, दुखी और उदास, उनकी आँखों में भी कोई खास चमक न थी...

लेकिन तब भी उनके चेहरे इन्सान के चेहरे थे, उन चेहरों का रंग उसी तरह चढ़ता-उतरता था जैसे कि उसे चढ़ना-उतरना चाहिए। हाँ, तुम बिलकुल ठीक समझीं, मैं यही कहना चाहता हूँ कि इस वक्त जो चेहरे मैं इक्के-दुक्के सड़क पर आते-जाते देख रहा हूँ, वे इन्सान के चेहरे नहीं, चलते-फिरते मिट्टी के चेहरे हैं। पूरे शहर ने मिट्टी के चेहरे लगा लिये हैं जिन पर उड़े-उड़े-से रंग हैं (कल यहाँ सख्त पानी बरसा था।) और भाव कोई नहीं। तुम इन्सानियत का कोई भाव इन चेहरों पर नहीं पढ़ सकतीं।

लोग डरे-डरे-से चल फिर रहे हैं, सहमे हुए-से, अगल-बगल के लोगों से चौकन्ने। क्योंकि किसी की जेब से लपलपाती छुरी निकल सकती है और किसी की बगल में भुँक सकती है, कौन जाने। बिला किसी शोर-शरापे के, बिला किसी बाजे-गाजे के, सिवाय उस लम्बी चीख के जो अनायास मुँह से निकल जाती है। किसी को क्या मालूम कि जो आदमी मेरी बगल में खड़ा है, या तम्बोली के यहाँ खड़ा पान खा रहा है, या अपने किसी दोस्त से बात कर रहा है, उसकी किसी जेब में छः इंच लंबा एक चाकू नहीं है।

हवा में खौफ की परछाइयाँ काँप रही हैं, आज इन्सान को इन्सान का डर है, क्योंकि एक इन्सान अब दूसरे को इन्सान नहीं, खूँ-खार भेड़िया समझता है। आदमी को अब अपने पड़ोसी का एतबार नहीं है, अपने भाई का एतबार नहीं है, अपना एतबार नहीं है, क्योंकि खुद अपने दिल में खून की प्यास ने घर कर लिया है। दिल से करीब नौ इंच

ऊपर एक मटमैला मर्तबान टँगा है जिसकी पेंदी में छेद है। इसी मर्तबान से जहर बूँद-बूँद करके चूता है और इन्सान के ज़मीर को सुला चलता है, लमहा-ब-लमहा...

*

स्टेशन से घर के रास्ते में मैंने देखा कि सड़कों पर कड़ा पहरा है। सड़कें बिलकुल निचाट सूनी हैं, काली चमकती हुई डामर की सड़कें। उन पर तेजी से सायकिल दौड़ाने की अनायास इच्छा होती है; लेकिन किसी किस्म की इन्सानी आमदरफ्त की इजाजत नहीं है। अब सड़कों पर आदमी नहीं, सिपाही चलते हैं, जिनके हाथ में बन्दूक है, जिनके सर पर लोहे की तसलानुमा टोपी है। अब इन्हीं के पैरों की आवाज वीराने को बसाने की कोशिश करती है। सड़क के नुक्कड़ पर सिपाहियों के गिरोह बैठे बीड़ी-सिगरेट पी रहे हैं और गंदे, फोहश मजाक कर रहे हैं। दो-चार इधर-उधर गश्त भी लगा रहे हैं। कुत्तों के रोने की आवाज सन्नाटे में दूर-दूर तक सुनायी दे रही है। आदमी घरों में बंद हैं। सड़क के मालिक कुत्ते हैं। बेजान सड़क से डर मालूम होता है क्योंकि वह बेजान है। हँसने की हिम्मत नहीं होती। जोर से बोलने में भी तबियत हिचकती है।

प्रिय, कल रात यहाँ जबर्दस्त आँधी-पानी आया था। बादल बुरी तरह घिर आये थे। फिर बड़ी धूल उड़ी, बड़ी धूल उड़ी; यही मालूम हुआ कि सारी दुनिया धूल मे गर्क हो जायगी। कुछ हम लोग मुँह खोल-कर धूल की फंकियों का इन्तजार न कर रहे थे, लेकिन तब भी दाँतों में रात-भर किसकिसाहट मालूम होती रही।...

...मगर एक आँधी उसके भी दो रोज पहले से यहाँ चल रही है, जिसकी किसकिसाहट दाँतों में न जाने कब तक मालूम होती रहेगी। वह सियाह गुस्से का अंधड़ है जिसमें कलह के मटीले बादलों से खून की बारिश हुई, जिसमें नफरत की बिजलियाँ अनगिनत नागिनों के पेटों की

तरह इलाहाबाद के आसमान में और सान पर रखे हुए चमचमाते छुरे की तरह इलाहाबाद की धरती पर चमकी।

मुझे हैरत यह देखकर होती है, उमा, कि नफरत की यह काई सिर्फ उन लोगों के दिल पर नहीं जमी है जिन्हें हम जाहिल और निचले तबके के लोग कहते हैं, बल्कि अच्छे पढ़े-लिखे, शरीफजादे भलेमानसों के दिलों पर भी। मेरे मेजबान डाक्टर साहब मेरे कान में पिघला हुआ सीसा उँडेल रहे हैं : "हिन्दू निहायत बोदा होता है, सौ फीसदी उल्लू का पट्ठा। ऊँट की तरह सिर उठाये चले जा रहे हैं, पीछे से आया एक आदमी और गच्च से...गोया तरबूज में चाकू भुँका और उसका लाल-लाल पानी बह निकला! गधे का बच्चा होता है हिन्दू, यह भी न होगा कि हाथ में एक छोटा-सा डण्डा या और नहीं तो तरकारी काटने की एक छुरी ही रख ले...और साहब, संगठन तो नाम को नहीं है उसमें। पड़ोसी के घर में आग लगी है और हम चैन से सो रहे हैं...साहब, यह कौम मिट जायगी, मेरी बात को गिरह बाँध लीजिए, देख लीजिएगा, यह कौम मिटकर रहेगी, इसी के लिए वह पैदा हुई है।"

गुस्से से उनका चेहरा लाल है। हिन्दुओं ने भी मुसलमान औरतों और बच्चों और बीमारों-बेकसों और सोते हुओं के पेट में चाकू क्यों नहीं भोंके? कितना सस्ता, मगर कितना अकसीर इलाज ढूँढ़ा है इस मर्ज का डाक्टर साहब ने!

"घरों में मुँह चुराता फिरता है, यह भी न होगा कि एक बार बढ़-कर दो-दो हाथ लड़ भी ले।...और एक वो हैं साहब! उनकी तो बात मत पूछिए, उन्हें तो बस छुरा भोंकना सिद्ध। वह लूकरगंजवाले पण्डित-जी हैं न, उनके लड़के को इसी तरह मार दिया; नखास कोहने पर से जा रहा था। दो-तीन गुण्डों ने उसे घेर लिया। एक ने उसकी दाढ़ी पर हाथ फेरना शुरू किया और कहा—क्यों मियाँ दाढ़ी कब घुटवा डाली,...पता लगाने के लिए कि कहीं यह मुसलमान तो नहीं है,...शायद आँख का इशारा हुआ और दूसरे गुण्डे ने तेजी से छुरे मारने शुरू किये। एक मिनट

में गुण्डे उसकी लाश को जमीन पर तड़पता छोड़कर जा चुके थे...देयर वेयर सेवेन गैशेज ऑन हिज़ बॉडी, सेवेन डीप गैशेज़ !"

सुननेवाले पशुता की यह कहानी सुनकर स्तब्ध हैं, लेकिन चेहरे पर ऐसा भाव लाना जरूरी समझ रहे हैं कि यह सब स्वाभाविक है, ऐसा ही होता है ऐसे वक्त पर, इसमें नया कुछ नहीं है। इन्सान बर्बरता पर स्वाभाविकता की मुहर लगाने को बेचैन है।

सुना है, जमुना ब्रिज पर—हाँ, वही जगह जहाँ से हमने डूबते सूरज की रोशनी में जमुना के नीले पानी का कलकल बहना देखा था, वही खूबसूरत जगह—उसी जमुना-ब्रिज पर एक मुसलमान इक्केवाले के जिस्म पर छुरे के पन्द्रह घाव पाये गये !...

फर्क उस पण्डित के लड़के और इस मुसलमान इक्केवाले में सिर्फ इतना है कि एक की कहानी हमारे डाक्टर साहब सुनाते हैं, दूसरे की एक मुसलमान हज्जाम। यह कहना गलत है कि हिन्दू और मुसलमान दो मजहब माननेवालों के नाम हैं। हिन्दू और मुसलमान असलियत में दो लेबल हैं; जिनके लगा देने से कत्ल कत्ल नहीं रह जाता, आदमखोर दरिन्दों को भी लजा देनेवाली हत्या, हत्या नहीं रह जाती, हो जाती है एक पवित्र और जायज कुर्बानी, आजादी के लिए—या पाकिस्तान के लिए !

कर्फ्यू सिर्फ दो घण्टों के लिए हटा था और मुझे डाक्टर साहब से जल्दी ही इजाजत लेनी थी, नहीं तो मैं उनसे जरूर यह सवाल पूछता,—

"मुसलमान के खून और हिन्दू के खून में कुछ फर्क होता है क्या ? आप तो उसकी डाक्टरी जाँच करके बता सकते हैं। आपको यही शिकायत है न कि जिसकी दाढ़ी पर हाथ फेरा जा रहा था, वह एक पंडित का लड़का न होकर किसी मौलवी का लड़का क्यों न हुआ ? जब तक इस गुलाम जमीन पर जिसका जर्रा-जर्रा गुलाम है, एक हिन्दुस्तानी के छुरे से दूसरे हिन्दुस्तानी का खून गिरता है, तब तक क्या बनता या बिगड़ता है इस बात से कि वह जिसने छुरा चलाया हिन्दू था या मुसलमान, या वह जिसे छुरा लगा मुसलमान था या हिन्दू...!"

कितना रस ले-लेकर मेरा हिन्दू रिक्शेवाला मुझे बतला रहा है कि शहर में ज्यादा हिन्दू मरे तो क्या हुआ, छिउकी में बहुत मुसलमान मारे गये...! मैं ठीक नहीं कह सकता कि उसने मुझे सरफिरा समझा या नहीं, जब कि मैंने कहा—"मुझे खुशी नहीं हुई यह बात सुनकर।" उसने कहा—"कल इसी जगह दो हिन्दुओं का कत्ल हुआ था।"...हमारा रिक्शा तब तक आगे बढ़ आया था। मैंने अनमने ढंग से उसकी बात का जवाब दिया,—"हूँ।" लेकिन मेरे दिमाग में चक्की के घर्र-घर्र की तरह डाक्टर साहब और रिक्शेवाले की बातें घूम रही थीं। मैंने अपने मन में कहा,—"देखो न, कितना पानी समस गया है स्वराज की भीत में—न जाने अब और कै घड़ी की यह मेहमान है!"

[२]

आज जब कि बाजार में महज नफरत के सिक्के चल रहे हैं, तुम उस दिन की कल्पना भी नहीं कर सकतीं उमा, जब कि एक लाख भूखे हिन्दोस्तानियों का जलूस कतार बाँधकर अपनी रोटी के लिए लड़ने निकला था। वह जुलूस नहीं, एक सैलाब था। वह भी एक दिन था उमा, और आज यह भी एक दिन है—या रात, अँधेरी घुप्प रात। अब तो उस दिन की याद भी घाव करती है। क्या चीज थी वह, मीलों तक आदमियों के सर ही सर शान से तने हुए, हवा में तीन रंगों का मेला। उमा, वह तीन झण्डों के संगम का दिन था, तीन धाराओं के संगम का दिन। उस दिन को जिसने देखा, उसी ने कहा—मेरी मौत भी अब अगर आ जाय तो मैं शान्ति के साथ मर सकूँगा, क्योंकि मैंने आज आजादी के सूरज को उगते हुए देखा है।

उस संगम के बहाव में दिलों के मैल के टीले कटने लगे थे।

उस दिन की याद को हरा करने के लिए, घाव पर नमक छिड़कने की तरह अब भी जानसेनगंज के चौराहे पर वही तीनों झण्डे लहरा रहे हैं।

लेकिन बात बदल गयी है, समाँ बदल गया है, जमीन बदल गयी है, आसमाँ बदल गया है, सभी कुछ बदल गया है। और तो और, इन्सान

भी बदल गया है। उस रोज जिस हाथ ने भाई के झण्डे को मजबूती से पकड़कर आसमान से छुलाया था, आज उसी हाथ में एक चमकती हुई छुरी बल खा रही है.....

एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की है कि प्रलय का दिन पास है। उमा, तैयारी कर लो, अब चल-चलाव के दिन हैं।

[२]

ठहरो, जमुना की लहरों पर यह किसकी लाश तैर रही है?

यह एक गुलाम हिन्दुस्तानी की लाश है।

जमुना के, आसमान की तरह नीले पानी में आज यह गँदली-गँदली-सी पीली सुर्खी क्यों है, आँधी के बादलों की तरह?

गुलामों के खून ने उसका तिलक किया है। सूर्य की बेटी यमुना अब गुलामी के सिंहासन की राजमहिषी है, कोई अब उसे कभी इस सिंहासन से उतार नहीं सकता!

अरब सागर के पानी में भी एक रोज इसी तरह आदमी का ताजा खून मिल गया था, लेकिन वह आजाद हिन्दोस्तानियों का खून था। उनका तन गुलाम था, मगर उनका मन आजाद था। उन्होंने आजादी के गुर को समझ लिया था। उन्होंने समुद्र की उबलती लहरों पर बगावत और आजादी का झण्डा गाड़ा था, (यह बात अलग है कि कुछ मारवाड़ी और गुजराती सेठों ने उसे उखाड़ दिया) वह वही झण्डा था जो कि जानसेन-गंज के चौराहे पर अब भी लहरा रहा है। उन बागी रूहों ने आजादी की दागबेल डाली थी। वे मरे तो वे आजाद थे, क्योंकि वे इस भ्रम से आजाद थे कि आजादी भाई का गला काटने से मिलती है। वे मरे तो वे आजाद थे, क्योंकि उन्होंने आजादी के मन्त्र की अपनी जानकारी का सबूत खुद यज्ञ में जलकर दिया, ऐडमिरल गाडफ्रे की आग-उगलती तोपों के महायज्ञ में!

...खून उनका भी गिरा, खून इनका भी गिरा, लेकिन...एक खून ने आगे का रास्ता साफ किया, चमककर आगे की राह दिखलायी।

दूसरे खून ने आगे का रास्ता उलझा दिया, दलदल की तरह पैरों को बाँध दिया।

एक लाश गिरी तो सूरज की रोशनी और तेज हो गयी। दूसरी लाश गिरी तो रात का अँधेरा और घना हो गया।

एक लाश गिरी तो आजादी की देवी जरा और पास सरक आयी। दूसरी लाश गिरी जहालत के ऐसे धुँधलके में कि पता हो न चला कि यह लाश गिरी तो क्यों गिरी, और पता अगर कुछ चला तो यही कि गले का फंदा और कस गया और आँखें शीशे की गोलियों की तरह निकल आयीं।

तुफ है उस कम्बख्त मौत पर, जिसे यह फख्र भी हासिल न हुआ कि वह आजादी के दिन को एक लमहा भी और पास लायी, पलकों के झपकने के बराबर एक पल भी!

लानत है उस खून पर, जिसने जमीन पर गिरकर फूल नहीं उगाये, बल्कि जमीन को ही जला दिया।...मगर बंजर नहीं बनाया, उसे जहर में बुझे हुए काँटों की झाड़ी उगाने की ताकत दी, लेकिन गेहूँ की एक बाल नहीं, फूल की एक कली नहीं। यह खून वह नहीं है जो काश्मीर में गिरा है। उस खून का एक-एक कतरा अपनी खुशबू से फिजा को मदहोश बना देनेवाला फूल बनेगा। यकीन न हो तो जून में जाकर देख लेना, काश्मीर की दिलफरेब वादी एक से एक प्यारी खुशबूवाले फूलों से भरी होगी।...

...यह खून वह नहीं है। यह खून जहाँ गिरेगा, वहाँ तो सिर्फ गुलामों का मरघट होगा, और गुलामों का कब्रिस्तान, जहाँ मुर्दा रूहों को भी भटकटैया के सैकड़ों काँटे हर वक्त चुभते रहेंगे।...लानत है ऐसी मौत पर! और लानत है उस हाथ पर जिसने इसलिए वार किया कि युग-युग से पोसा हुआ आजादी का सपना भाई के खून में डूब जाय। और लानत

है उस हाथ पर जिसने इसलिए वार किया कि आसमान की तरह नगीह गुलामी की सिल के नीचे कराहता हुआ पाकिस्तान मिले, जिसका चप्पा-चप्पा गुलाम है, जिसके गोशे-गोशे से सड़ाँद के बफारे छूटते हैं और जहाँ इस्लाम की आजाद रूह पर हैवानों की संगीनों का साया है!

हिन्दुस्तान खुदकुशी कर रहा है। गुलामों की लाशें गिर रही हैं। हवा मौत की गुम आवाजों से भारी है। मिलिटरी की ट्रकें घरघरा रही हैं।

[जनयुग, १६ जून'४६]

परत्ती के फूल

समझौते की कमान लचते-लचते आखिरकार टूट ही गयी।

लिहाजा आज काटन मिल के फाटक से थोड़ी दूर हटकर मजदूरों की टोलियाँ गश्त करती दिखायी दे रही हैं। सभी नाकों पर दो-दो तीन-तीन मजदूर मुस्तैदी के साथ खड़े हैं। सबके सीने पर या कमीज की बाँह में लाल बिल्ला पिन से टँका हुआ है। कुछ स्वयंसेवकों को चारों तरफ काफी दूर-दूर तक भेज दिया गया है जिसमें वे काम पर आनेवाले लोगों को आगे से ही वापस कर दें। मजदूरों को आगे से ही समझा-बुझाकर वापस कर देना जरूरी है क्योंकि मिल के आसपास लाल बिल्ले के साथ-साथ लाल पगड़ी भी दिखायी दे रही है। यह लाठीधारी पुलिस यों ही, शौकिया बुला ली जाया करती है—मजदूरों को डरवाने के लिए। लेकिन इन जंगजू मजदूरों के तेवर देखकर अंधा भी यह कह सकता है कि आज का मजदूर पहले की भीगी बिल्ली नहीं है, अब वह आगे बढ़कर चोट करता है। यह लाठीधारी पुलिस जो फौरन बुला ली जाया करती है, मौका पड़ने पर डंडे बरसाने में कोई कसर नहीं उठा रखती; मगर तब भी न जाने क्यों कोई उनको कुछ समझता नहीं। शायद इसीलिए वे सब भी दो-दो तीन-तीन के गुच्छों में, अपनी लाठियों का कुछ-कुछ सहारा लिये खड़े-खड़े बीड़ी पिया करते हैं और एक अजब मुसकराहट के साथ (उनके चेहरों पर यह कैसी नहूसत बरसती रहती है!) स्वयंसेवकों से कोई चर्चा छेड़ते हैं और दोस्ती-सी पैदा करने की कोशिश करते हैं।

अभी सवेरे के छ बजे हैं। मिल का काम साढ़े सात बजे शुरू होता

है। सात बजे से मजदूर आने लग जाते हैं। इसीलिए हड़ताल का मोर्चा भी अपनी पूरी तेजी के साथ तभी तैयार होता है। अभी तो सभी आनेवाले मोर्चे पर डटने के लिए तैयार हो रहे हैं—लाल स्वयंसेवक, पुलिसवाले और मिल के दरबान, लठैत सभी।

अभी तो ज्यादा से ज्यादा संघर्ष जबान चलाने का है। दरबानों की तरफ से कोई ताने का फिकरा कसा जाता, तो इधर से चौगुना तेज-तर्रार जवाब नुकीले पत्थर की तरह, फाटक से लगकर खड़े हुए दरबानों के ऊपर चलाया जाता। गोली या तीर लगने पर जैसे बनैला सुअर अपने अनुमान से सीधे गोली या तीर चलानेवाले की तरफ दौड़ता है, उसी तरह मजदूरों के जवाब की तेजी से बौखलाकर दरबान जल्दी ही माँ-बहन पर उतर आते और फोहश बातें कहकर अपनी कारगुजारी पर आपस ही में हँसते। मगर स्वयंसेवकों को घेरकर खड़े हुए उसी मोहल्ले के, बस्ती के मजदूर फोहश बातों में भी किसे अपने से आगे जाने देते! उनके जवाब दरबानों के चिथड़े-चिथड़े उड़ा देते और वे सूरन की तरह शरीरवाले, खैनी मलने के कारण लाल हथेलियोंवाले बाँभन-ठाकुर दरबान अपने कान पर हाथ रखकर अपनी कुलीनता का एलान करते और बुदबुदाते—कमीनों के मुँह कौन लगे!...और उनकी हँसी को उसी दम लकवा मार जाता।

मोर्चे का वक्त पास आता जा रहा था, लेकिन आज हड़ताल का पहला दिन था, इसलिए ज्यादा लड़ाई दंगे की उम्मीद न थी। कुछ मजदूर हड़ताल की सूचना न होने के कारण आयेंगे और दूर के नाकों पर से ही समझा बुझाकर वापस कर दिये जायँगे। इसलिए मिल के सामने की सड़क पर कोई नहीं है। स्वयंसेवक इसलिए नहीं हैं कि उनके वहाँ रहने से दरबानों और मालिक के लठैतों को दंगा-फसाद करने में मदद मिलती है, और मजदूर इसलिए नहीं हैं कि एक तो वे आ नहीं रहे हैं और दूसरे जो इक्के-दुक्के आते हैं वे बात समझकर या तो तुरन्त लौट पड़ते हैं या किसी दुबिधा के शिकार होकर वहीं खड़े-खड़े तमाशा देखने लग जाते हैं, बहुत कुछ इस कुतूहल से कि देखें ऊँट किस करवट बैठता है। मिल का

वक्त हुआ जानकर दो खोंचेवाले मसालेदार आलू और मटर, तेल की काली जलेबी और गुड़हे सेवड़े लिये, नीम के नीचे रोज की तरह आ बैठे हैं। लेकिन आज सन्नाटा है, उनके कद्रदाँ नहीं हैं। सिर्फ चार-पाँच आदमी पास के नल पर भीड़ लगाये हाथ-मुँह धो रहे हैं। खोंचेवाले को अगर कोई उम्मीद हो सकती है तो इन्हीं लोगों से।

मिल की पहली सीटी बजी जिसे सुनकर नल पर मुँह धोनेवाले एक आदमी ने कहा—यह क्या झूटमूठ चिचिया रही है।

पास ही खड़े हुए एक मजदूर स्वयंसेवक ने कहा—भैयाजी (मिल मालिक) का सबसे ढेर दुख इसी को ब्यापे है।

और दिन इसी सीटी के बाद से मजदूरों का आना और फाटक के भीतर दाखिल होना शुरू हो जाता है, मगर आज कोई आ-जा नहीं रहा था। लोढ़ू पहलवान को यह देख देखकर कोफ्त हो रही थी कि जो दस बीस आये भी हैं वे भी अन्दर नहीं आ रहे हैं। उसने गुहार लगायी—चलो चलो, सब लोग अन्दर चलो...कोई किसी को नहीं रोक सकता... मिल चालू है...जानेवाले को कौन रोक सकता है...

अपने नाम को सार्थक करनेवाले लोढ़ू दरबान से मजदूरों को खास चिढ़ थी। उसके मुँह से कोई बात निकली नहीं कि मजदूरों ने उसकी टाँग घसीटी।

मजदूरों की तरफ से ललकार आयी—अरे वाह रे लोढ़ू पहलवान, बहुत बढ़ बढ़कर बातें कर रहे हो, उस वक्त तुम्हारी बोलती क्यों बन्द थी, अरे तभी जब तुम नाली में......

और सब हँस पड़े। लोढ़ू खिसिया गया, मजदूर इसी बात पर उसकी सबसे ज्यादा खिल्ली उड़ाते थे। असल वाकया यह है कि एक बार दरबानों की ज्यादतियों से तंग आकर तमाम मजदूरों ने दरबानों पर हमला बोल दिया और जिसको जहाँ पाया इतना मारा, इतना मारा कि उनमें से सात-आठ तो कई रोज तक खटिया पकड़े रहे और हल्दी चूना लगाते रहे। उस वक्त सबकी आँख खास तौर पर लोढ़ू पर थी कि उनकी सब पहल-

वानी ही निकाल दी जाय, लेकिन वह उस वक्त ऐसा बगटुट भागा कि किसी को उसकी गन्ध भी नहीं मिली। वह तो दूसरे रोज उनका भेद खुला जब कि वह लँगड़ाते हुए देखे गये। हुआ यह कि जब हजरत जल्दी में चहारदीवारी फांदकर बाहर आये तो दीवाल से सटकर बहती हुई नाली में जा पड़े। पैर मोच खा गया सो अलग, कीचड़ में सन गये सो अलग, और सब वह तो चाहे भूल भी जायें एक बार, मगर पहलवानी की कीर्ति तो हमेशा के लिए कीचड़ में सन गयी। वह कभी भूली जा सकती है क्या?...

दूसरी सीटी भी बजी लेकिन काम करनेवालों का कहीं पता न था। दरबान और लठैत अपनी जगह पर खंभों की तरह खड़े थे, स्वयंसेवक अपने अपने नाकों पर डटे खड़े थे और उनके कमाण्डर झक्कड़ गुरू सायकिल पर सवार, हाथ में भोंपू लिये, तरह तरह की गर्जनाएँ करते अपने पक्षवालों में उत्साह का संचार करते हुए और दुश्मन के दिल को दहलाते हुए घूम रहे थे। किसी नाके पर अगर साथियों में कोई ढीलापन देखते जैसे कोई अगर अपना नाका छोड़कर कहीं और चला गया है या काम की तरफ से बेखबर होकर गप्प लगा रहा है या बीड़ी पीने-पिलाने में मस्त है, तो उसको समझा देते, तम्बीह कर देते जैसा कि कमाण्डर के लिए उचित ही था!

इस वक्त नौ बज रहे थे, आज का मोर्चा एक तरह से सर किया जा चुका था। कुछ स्वयंसेवकों में ढीलेपन के चिह्न देखे जा रहे थे और कमाण्डर झक्कड़ गुरू सबको चेतावनी दे रहे थे कि दुश्मन की चालों का अन्त नहीं होता, इसलिए कभी काम में लापरवाही या सुस्ती नहीं करनी चाहिए।

[२]

आज हड़ताल का दसवाँ दिन है। अब बाजी बहुत उलझ गयी है, मामला बहुत संगीन हो चुका है। मालिक के गुण्डे झक्कड़ गुरू का सिर खोल चुके हैं। झक्कड़ गुरू के ऊपर किये गये वार का बदला मजदूर उस गुंडे का खून करके ले चुके हैं। झक्कड़ गुरू के सिर में घाव गहरा लगा था,

लाठी के सिरे पर लगा हुआ लोहा काफी अन्दर तक धँस गया था, लेकिन अब उनका जीवन खतरे में नहीं था।

इस वक्त उनकी जगह पर करीम कमाण्डरी कर रहा था।

आज सवेरे से ही तरह तरह की अफवाहें हवा में उड़ रही थीं। सुनने में आता था कि अब भैयाजी एक दिन भी हड़ताल बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं हैं और आज वह हड़ताल तोड़कर रहेंगे, इसके लिए फिर उन्हें चाहे जो करना पड़े। सबको विश्वास हो गया कि आज वहाँ पर कुछ लाशें जरूर गिरेंगी।

लच्छन सभी इसी बात के हैं। काफी संख्या में मिलिटरी पुलिस बुला ली गयी है। लाठीधारी विदूषकों के स्थान पर अब राइफलों और संगीनों से लैस सिपाही सिर पर लोहे की टोपी दिये गश्त लगा रहे हैं। लोहे की टोपी काम की चीज है, पूरे शरीर में सिर ही सबसे नाजुक जगह है न!

मिलिटरी पुलिस को देखकर लाल स्वयंसेवकों का जोश भी बहुत बढ़ गया है। मगर सब खामोशी से अपना काम किये जा रहे हैं; कुछ इस भाव से कि हमारे नजदीक मिलिटरी के रहने न रहने से कोई फर्क नहीं पड़ता, हमको जो करना है, वह तो हम करेंगे ही।

दोनों ओर से काफी तनातनी है, लगता है, आज कोई बात फैसल होकर रहेगी।

तभी एक जाबर (मिस्त्री) एक मजदूर को साथ लेकर आया और मिल की ओर बढ़ा। पहले नाके पर रामनाथ, कृपाराम और मूनिस थे। रामनाथ और कृपाराम तो अच्छे पूरे आदमी थे, मझोले डीलडौल के, मगर मूनिस अभी लड़का था, पन्द्रह-सोलह साल का।

रामनाथ ने आगे बढ़कर रास्ता रोकते हुए कहा—क्यों भैया, क्यों सबके पेट में लात मारकर काम पर जा रहे हो। हड़ताल किसी एक के फायदे के लिए नहीं है।

वह मजदूर कुछ बोला नहीं, सिर नीचा किये खामोश खड़ा रहा। जाबर ने उसका हाथ पकड़कर आगे की ओर खींचा और चिल्लाकर कहा—

आगे बढ़ते क्यों नहीं, काम पर जानेवाले को कोई नहीं रोक सकता, तुम आगे बढ़ो, हम देखते हैं कौन रोकता है।

कुछ झटका खाकर और कुछ जाबर की बातों से हिम्मत पाकर मजदूर आगे बढ़ा। तब कृपाराम ने उसका हाथ पकड़ा और मूनिस ने पैर और रामनाथ वहीं उसके आगे लेट गया।

रामनाथ ने कहा—तुमको जाना हो तो मेरी छाती पर पैर रखकर जाओ।

जाबर ने मजदूर को उकसाया—बढ़ते क्यों नहीं, कोई आवारा आकर तुम्हारे रास्ते में लेट जायगा तो इससे क्या तुम डर जाओगे?

मजदूर ने रामनाथ से उठने और रास्ता छोड़ने के लिए बिनती करते हुए कहा—भैया, मेरे बाल-बच्चों का कोई सहारा नहीं है, सब भूखों मर रहे हैं...

कृपाराम ने कहा—बाल-बच्चे किसके नहीं हैं? और किसके घर में खाने को है? खाने को होता तो हड़ताल करते? खाने ही के लिए तो हड़ताल है...

मजदूर की समझ में बात कुछ आ गयी और वह मुड़ने को हुआ—एक भूखे दुखी साथी ने आँखों में आँखें डालकर बात कही तो वह दिल में उतर गयी।

जाबर बहुत ऊँचनीच सुझाकर उसे यहाँ तक लाया था, उसे यह मंजूर नहीं था कि ऐन मौके पर कोई उसका शिकार उसके हाथ से छीन ले। उसने एक बार फिर मजदूर को आगे की तरफ खींचा। पीछे से दरबानों वगैरः ने उसे ठेला। अब एक अजीब सूरत पेश थी—उस आदमी के लिए बाकायदा छीना-झपटी हो रही थी। हड़तालियों की ओर से तीन लोग और उधर से चार-पाँच दरबान, एक जाबर और ऐसे ही एक दो लोग और। तीस चालीस तमाशाई भी इकट्ठे हो गये थे और मिलिटरी पुलिस के भी चार आदमी जो इसी मौके की तलाश में थे, मुकाम पर पहुँच चुके थे। इन चार लोगों में से एक ने जो जरा वयस्क था, चिल्लाकर तमा-

भाइयों को चले जाने के लिए कहा। और फिर कृपाराम, रामनाथ, मूनिस को घुड़ककर हुक्म दिया कि उस आदमी को छोड़ दो। उन लोगों ने दारोगा साहब (या जो भी रहे हों वह) का हुक्म पाकर पैर छोड़ देने के लिए तो पकड़ा नहीं था। लिहाजा उन पर मिलिटरी पुलिस के उन हज़रत की बात का कोई असर नहीं हुआ। इधर दारोगा साहब से 'कमीने' मजदूरों की यह 'हरमजदगी' अब और बर्दाश्त न हुई और उन्होंने अपने बूट की एक ठोकर कसकर मूनिस के मुँह पर मारी। मूनिस का मुँह फूट गया और तल-तल करके खून बहने लगा, लेकिन मूनिस ने पैर नहीं छोड़ा। दारोगा साहब जानते थे कि ठोकर जिस्म के किस हिस्से में ज्यादा कारगर होती है। उन्होंने दूसरी ठोकर मूनिस की पसलियों में मारी। इस बार मूनिस के मुँह से एक चीख निकली, पैर उसकी गिरफ्त से छूट गया और वह वहीं लेट गया—बेहोश, खून जारी। जाबर मजदूर को लेकर आगे बढ़ गया। मूनिस के साथियों ने मूनिस को उठाया और मजदूर सभा के दफ्तर ले गये। बाकी लोग अपनी जगह पर पहरा देते रहे।

करीब पन्द्रह मिनट बाद मिल की मोटर निकली जिसमें माइक्रोफोन लगा हुआ था। माइक्रोफोन में से एक आदमी चीख रहा था—मजदूर भाइयो, आप लाल झण्डेवाले गद्दारों के बहकावे में न आवें। मिल चालू है, आप भी काम पर जाइए। जो लोग अब भी शान्ति से काम पर चले जायँगे, उनके साथ कोई सख्ती नहीं की जायगी। जाइए जाइए, काम पर जाइए, बाहर के बहकानेवालों के फन्दे में मत पड़िए। मिल चालू है, काम जारी है। लाल झण्डेवाले तो आपकी लगी रोजी छुड़वाना चाहते हैं, वह आपके दुश्मन हैं, वह आपका भला नहीं चाहते। जाइए जाइए, काम पर जाइए...

इतनी स्पीच देकर वह मोटर आगे बढ़ गयी—असल में वह मोटर खाली स्पीच देने नहीं निकली थी। वह निकली थी मजदूरों को बटोरकर लाने। वे सोचते थे कि पैदल आने पर हड़ताली रोक लेते हैं, मोटर पर लायेंगे तो कोई नहीं रोक सकेगा।

यह जरूर है कि मजदूरों ने ताली पीटकर और 'हो हो' का हुड़दंग मचाकर मोटर की रपीच का स्वागत किया था, लेकिन हड़ताल चलानेवालों के आगे अब यह बात साफ थी कि लड़ाई अब एक दूसरे धरातल पर पहुँच गयी है। अब खाली समझाने-बुझाने का काम नहीं है। मालिक अब हड़ताल तोड़ने के लिए कुछ भी उठा न रखेगा। खून बहाने से भी बाज न आयेगा, अपना नहीं मजदूरों का। मोटर निकालने का मतलब ही यही है कि वह जबर्दस्ती लोगों को काम पर ले जाना चाहता है। स्थिति की भयंकरता सब पर स्पष्ट थी। मोटर रोकने के अलावा अब दूसरा रास्ता नहीं था। और मोटर रोकने में जोखिम भी कम न था। मगर लड़ाई तो चीज ही जोखिम की है। मोटर तो रोकनी ही पड़ेगी। नहीं तो हड़-ताल हरगिज हरगिज नहीं चल सकती। मोटर चलाकर तो उसने एक ऐसा रास्ता खोलने की कोशिश की है जिससे वह सभी को फाटक के भीतर खींच सकता है। मजदूरों में चेतना काफी नहीं है, जाबर का दबाव इसलिए बहुत माना जाता है, फिर लठैतों की तेल पी-पीकर काली लाठियाँ, फिर तरह-तरह के झूठे प्रचार, फिर बाल-बच्चों की रोज रोज की भूख—हजार चीजें होती हैं जो पैरों को डगमगा सकती हैं। उनको न-कुछ समझना भयानक गलती होगी। हवा में उड़ने से काम नहीं चलता। लिहाजा हड़ताल चलानेवालों पर यह बात बिलकुल साफ थी कि मोटर निकालकर मालिक ने बहुत संगीन हालत पैदा कर दी है। अब बात सिर्फ इतनी थी कि अगर हड़ताल को कामयाब बनाना है तो मजदूरों का पहला खेप लेकर आनेवाली मोटर को ही रोकना होगा, फिर जो होना हो, हो।

करीम अपने काम में लग गया।

पहली मोटर जब आयी तब पत्थरों की मार से उसके तमाम शीशे फूटे हुए थे और लाठी के तीन चार गहरे हाथों ने रेडिएटर को पिचका दिया था, लेकिन फोर्ड की गाड़ी बला की बेहया होती है, लाठी के वारों

का गाड़ी के इञ्जन पर कोई असर नहीं हुआ था। न हुआ हो, मगर इससे यह बात तो साफ थी कि मोटर का मजदूर बस्तियों में कैसा स्वागत हुआ। मोटर का खाली लौटना तो बहुत हेठी की बात होती, लिहाजा कुछ रंगरूटों को मोटर में बिठाल लिया गया था। मोटर में बैठे हुए लोगों में कुछ नाकारे शहरी लफंगे थे और कुछ घसियारे। उनको लाने का उद्देश्य मजदूरों को धोखे में डालना था—देखो, तुम्हारे ये भाई काम पर जा रहे हैं!...लेकिन ऐसे आँख के अन्धे कहीं और बसते होंगे। सबों ने जोर से कहकहा लगाया और अपने अपने ढंग से बात कही जिस सबका लुब्बे लुबाब था—भाइयो, अब तो लगता है, मिल चल ही जायगी, लेकिन भाई, यहाँ तो मशीन चलाने का काम है, कोई घास छीलने का काम तो है नहीं!...

मोटर के रास्ते में इन्सानों की एक दीवार खड़ी थी। करीम भी समझता था कि मोटर में बैठे हुए लोग मजदूर नहीं हैं और मशीनें चलाना उनके बस का रोग कतई नहीं है। लेकिन तब भी उसने इन्सानों की यह दीवार खड़ी करने ही की ठानी थी, क्योंकि एक तो यह कि मोटर को निर्द्वन्द्व भाव से घूमने देना खतरे को न्योता देना था, दूसरे यह कि लड़ाई में कामयाबी का सेहरा उनके सिर बँधता है जो दुश्मन के हमले का इंतजार नहीं करते, बल्कि जो खुद आगे बढ़कर वार करते हैं, पहली ही चोट हनकर मारते हैं।

लिहाजा बीस मजदूर आपस में हाथ बाँधे खड़े थे। उन्होंने रास्ते को अच्छी तरह छेंक लिया था और मोटर के निकलने की कोई सूरत न थी।

मिलिटरी पुलिस के दारोगा ने आकर करीम से कहा—रास्ता रोकना गैरकानूनी है। आप अपने वालंटीयरों को हटा लीजिए।

करीम ने जवाब दिया—हम ऐसे कानून की रत्ती भर परवाह नहीं करते जिसके मातहत रास्ता रोकना गैरकानूनी है मगर चार हजार मजदूरों का पेट काटना गैरकानूनी नहीं है।

दारोगा ने कहा—मैं इस वक्त यहाँ आपसे बहस करने नहीं आया हूँ।

करीम ने जवाब दिया—मुझे भी आपसे बहस करने की फ़ुर्सत नहीं है। आप अपना काम कीजिए।

दारोगा ने मजदूरों की हितचिन्तना से कातर होते हुए कहा—मैं चाहता हूँ कि नाहक खून-खराबे की नौबत न आये। कोई सहूलियत का रास्ता निकाल लीजिए।

करीम ने कहा—हमने सहूलियत के रास्ते निकालने की सिरतोड़ कोशिश की, लेकिन सहूलियत का रास्ता नहीं निकला। अब हमारी जंग शुरू है।...आप चाहें तो मुझे गिरफ्तार कर सकते हैं, मगर इस्पात की इस दीवार को नहीं तोड़ सकते।

दारोगा ने अपने स्वर में कड़ापन भरते हुए कहा—मैं आपको गिरफ्तार नहीं करूँगा। मैं आपकी इस दीवार को तोड़ूँगा। मगर मैं फिर कहता हूँ कि आप मुझे किसी सख्त कार्रवाई का सहारा लेने के लिए मजबूर न करें।

करीम ने उसी शान्त, अविचलित भाव से कहा—मैं आपको किसी बात के लिए मजबूर नहीं कर रहा हूँ। हम अपना काम कर रहे हैं। आप अपने काम के बारे में हमसे ज्यादा जानते हैं।

मोटरवाला हार्न बजा-बजाकर कान के पर्दे फाड़े डाल रहा था। हवा में जैसे बिजली दौड़ गयी हो—एक अजब-सी थरथरी थी। उधर मिलिटरी पुलिसवाले हमले के हुक्म का इन्तजार कर रहे थे, इधर पास-पड़ोस की बस्तियों से घिरकर आये हुए सैकड़ों मजदूर अपने इन जाँबाज साथियों की जान बचाने के लिए बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देने को तैयार हो रहे थे—सबके दिलों में जोश लहरें मार रहा था। तय था कि इसी मुकाम पर अब एक मोर्चा लड़ लिया जायगा, दोनों ही फरीक अपनी-अपनी ताकत की आजमाइश के लिए उतावले हो रहे थे। मजदूर सोचते थे, यह रोज-रोज का रोना ठीक नहीं, अब निबट लेना ही ठीक है। एक-एक पकड़ हो जाय, वही अच्छा है।

और तभी हुक्म हुआ कि रास्ता रोककर खड़े हुए इन गुण्डों को रास्ते से अलग कर दो।

राइफल के कुन्दों और संगीनों से हमला बोल दिया गया। मजदूरों ने भी देखा कि उन्हें जिस घड़ी का अब तक इन्तजार था, वह आ गयी। पलक मारते-मारते-भर में, गोया जमीन फोड़कर कुछ लाठियाँ भी निकल आयीं और मजदूर भी कूद पड़े। दोनों ओर की ताकतें आपस में गुँथ गयीं। कहीं इस गड़बड़ी का सुयोग पाकर मोटरवाला निकल न जाय इसलिए करीम, तेईस-चौबीस साल के मजबूत नौजवान करीम ने दौड़कर ड्राइवर की नाक पर एक घूँसा कसकर मारा। ड्राइवर बेहोश होकर वहीं अपनी सीट पर लुढ़क गया। करीम तुरन्त लौटकर वहाँ पहुँचना ही चाहता था जहाँ कि अब घमासान लड़ाई हो रही थी, जब कि राइफल का एक कुन्दा आकर उसके सिर पर पड़ा। उसकी आँखों के नीचे जमीन नाचने लगी और वह वहीं गिर पड़ा। गिरते-गिरते उसके कानों में गोलियाँ चलने की आवाज आयी।

लड़ाई खत्म होने पर मजदूरों ने अपने चौबीस घायल सैनिकों को अस्पताल पहुँचाया। तीन मजदूर मारे गये थे। उनमें एक कृपाराम था और बाकी दो बिलकुल नये लोग थे जिन्हें विप्लव के उस क्षण ने वीर बना दिया था। उन्होंने आगे बढ़-बढ़कर अपनी लाठी के जौहर दिखलाये थे। सुनते हैं कि पुलिस का जो एक आदमी मारा गया वह इन्हीं में से एक की लाठी से। पुलिस के पाँच आदमी घायल भी हुए। पुलिस के लोगों को ज्यादातर ईंट-पत्थर के घाव थे। एक का हाथ लाठी के भरपूर वार से टूट गया था। घायल मजदूरों को या तो संगीनों के घाव थे या राइफल के कुन्दों के। किसी का सिर फट गया था, किसी की गर्दन पर घाव था, किसी के पेट को और किसी के पेडू को राइफल के कुंदों से आँटे की तरह गूँधा गया था; कुछ को संगीनें लगी थीं, बगल में या पुट्ठों पर। गोली के छर्रे बहुत-से लोगों को लगे थे, मगर पैर में—दारोगा साहब की बड़ी शराफत थी!

लड़ाई के करीब तीन घण्टे बाद, बारह बजे के लगभग माइक्रोफोन-वाली मोटर निकली। माइक्रोफोन में से आवाज आ रही थी—भाइयो, आज यहाँ पर जो कुछ हुआ है, उसका हमें सख्त सदमा है। हमारे इतने भाइयों की जानें फिजूल गयीं। आप ही सोचिए, इससे किसी को क्या फायदा पहुँचा! आप लोगों को चाहिए...

इसके बाद माइक्रोफोन और नहीं बोल सका, ईंटों और पत्थरों की बारिश ने उसका मुँह बन्द कर दिया। मजदूरों की भीड़ में से आवाज आयी—हत्यारे घाव पर नमक छिड़कने आये हैं!

माईक्रोफोनवाली मोटर बाहर भेजने का असल मकसद भी यही था। लोगों पर आतङ्क जमाना और उनके दिमाग में यह बिठालना कि इस तरह जान देना बिलकुल बेकार है, इससे कुछ हासिल-वासिल न होगा। अगर कुछ हासिल करना है तो भैयाजी के सामने जाकर हाथ बाँधकर खड़े हो!

लेकिन मजदूर अब वही करने को तैयार न थे।

भैयाजी को मजदूरों का जवाब एक ही घण्टे बाद मिला जब कि चार हजार मजदूरों और एक हजार गैर-मजदूर शहरी जनता का जुलूस तीन शहीदों की अर्थी के साथ, आसमान को अपने इन्कलाबी नारों से गुँजाता हुआ निकला।

भैयाजी और उनके मैनेजर साहब को इस बात का पूरा इत्मीनान हो गया था कि अब उन्होंने पाला मार लिया है और अब मिल के इलाके में हड़ताली परिन्दे पर भी नहीं मार सकते।

उन्होंने अपने को किस बात से यह विश्वास दिला लिया, यह कहना मुश्किल है, क्योंकि जाहिरा तो ऐसी एक भी बात नहीं हुई जिससे यह पता चलता कि हड़तालियों के हौसले पस्त हो गये हैं। सभी स्वयंसेवक अपनी

जगह पर मुस्तैदी के साथ पहरा दे रहे थे। हवा में एक भारीपन जरूर था, लेकिन जहाँ इन्सान का खून गिरा हो वहाँ भारीपन का होना स्वाभाविक है। मगर हवा में भारीपन चाहे जितना रहा हो, मजदूरों का जोश दोबाला था, उनके दिलों पर डर का एक जर्रा बराबर काला दाग नहीं था। उल्टे, पैरों में एक नयी दृढ़ता थी।

भैयाजी और मैनेजर साहब अपने दिल में चाहे जो समझते रहे हों, लेकिन उनके अचरज की सीमा न रही होगी जब उनके चरों ने दूसरे रोज उन्हें खबर दी होगी कि कल के घायलों की जगह लेने के लिए आज बिलकुल दूसरे लोग आये हैं; और वे आये हैं तो झुकने के लिए नहीं, अपने साथियों के खून का बदला लेने के लिए। अपने चरों से ही उन्हें यह भी पता चल गया था कि मजदूरों की ओर से आज मारने या मर जाने की पूरी तैयारी है। यों भी यह जिन्दगी क्या बहुत जीने लायक है। रोज-रोज के मरने से यह एक रोज की मौत अच्छी—बाद में लोग यह तो कहेंगे कि आदमी भाग्यवाला था, मट्टी सुफल हो गयी। जिन्होंने कल निहत्थे ही गोलियों और संगीनों का मुकाबला किया, उनके लिए आज किसके मन में और मुँह पर वाहवाही नहीं है— क्या हम-तुम भी उन्हीं का जस नहीं गा रहे हैं!

मगर किस्से को तूल देने से क्या फायदा। दूसरे रोज फिर उसी कल-वाली घटना की पूरी-पूरी आवृत्ति हुई, थोड़े और बड़े पैमाने पर। इस बार मजदूरों के तीस आदमी घायल हुए और सात मारे गये। पुलिस के भी दो आदमी मरे और पाँच घायल हुए।

तीसरे रोज फिर वही सूरत पेश थी, मरनेवालों की टोलियाँ सिर पर कफन बाँधे खड़ी थीं—पाँच-छ ने, जो मुसलमान थे, वाकयी कफन बाँध रखा था।

दारोगा साहब का कौल ठीक था कि वह इन्सानों की उस दीवार को

तोड़ देंगे। उन्होंने अपने कौल को पूरा किया, दीवार की एक-एक ईंट को उन्होंने दो-दो बार काटकर गिरा दिया, लेकिन अगर तीसरे रोज फिर एक नयी दीवार जमीन फोड़कर निकल आती है और मोटर का रास्ता रोक लेती है तो इसका उनके पास क्या इलाज है। मुमकिन है, हिन्दू दारोगा साहब ने रक्तबीज की कहानी छुटपन में पढ़ी हो, लेकिन उन्होंने कभी यह न सोचा होगा कि उन्हें कभी उसका सामना करना पड़ेगा। और आज जब तीसरी बार उन्हें उसका सामना करना पड़ा तो उनके हाथ-पैर फूल गये। उन्होंने मिल के अन्दर जाकर फोन पर भैयाजी से बातचीत की और उन्हें अपनी जबान में पूरी परिस्थिति समझाते हुए सलाह दी कि हड़तालियों की माँगें मान लेना ही ठीक होगा, इस तरह रोज-रोज अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसाना, मुमकिन है, परिस्थिति को और बिगाड़ दे, अब और गोली चलाना आग से खेलना होगा...

और आग का खेल तभी तक अच्छा होता है जब तक कि अपना हाथ नहीं जलता।

लिहाजा तीसरे रोज गोली नहीं चली। मोटर फिरी और दूसरी दिशा में न जाने कहाँ चली गयी। मोटर को मुड़कर भागते हुए देखकर मजदूरों ने ताने भरे नारे लगाये। ये नारे जहर में बुझाये हुए तीरों की तरह दारोगा साहब और भैयाजी के गोयन्दों को लगे, लेकिन जो आदमी सिर हथेली पर रखकर नारे लगा रहा हो, उसके नारे को न सुनने की ताकत किसमें है।

शाम को मजदूर-सभा के मन्त्री को मैनेजर साहब ने बुलाया और बड़ी मीठी-मीठी बातें कीं, हलाक जानों के लिए मातम मनाया और कहा—हममें-तुममें क्या फर्क है, हम-तुम तो एक ही हैं, मिलकर रहने में ही सबका फायदा है।

मातमपुर्सी के चार शब्द कहने के बाद, मुमकिन है, उनके जेहन से उन मजदूरों की बात उतर गयी हो जिन्होंने अपनी जिन्दगी से हाथ धोया, लेकिन जिस वक्त मैनेजर साहब ने रामहरख सिंह से कहा कि हममें-तुममें क्या फर्क है उस वक्त उसे लगा कि मैनेजर साहब की बात के जवाब में

मजदूर-सभा के स्वयंसेवक स्ट्रेचरों पर लाशें उठा-उठाकर लाये और मैने-जर और मंत्री के बीच की मेज पर सुलाते गये...एक...दो...तीन...चार...अनगिनत लाशें और फिर अजब ऊटपटाँग पट्टियों में कसे-कसाये मजदूरों के दल के दल...क्या मिल के चारों हजार मजदूरों को चोट लगी है।...

कल नीम के नीचे जिस जगह पर खून बहा था, उससे करीब तीस गज की दूरी पर एक दूसरे नीम के पेड़ के नीचे आज शाम को साढ़े छ बजे सभा है। जीत की खबर कबकी फैल चुकी थी। मजदूरों के जोश का अन्त न था। कार्यकर्ता मजदूरों को उनकी जीत की खबर सुनाने गाँवों को चले गये थे।

सभा की जगह फूल-पत्तियों से अच्छी तरह सजायी गयी थी। केलों के पेड़ खड़े करके फाटक बना लिया गया था। सभा के मैदान के चारों तरफ अशोक की पत्तियों का बंदनवार बँधा हुआ था। गोया मूनिस और कृपाराम और करीम और अकड़ गुरू और उन छ शहीदों (जिन्हें क्रांति की एक चिनगारी ने छूकर उजागर कर दिया था) के खून में ही रँगे हुए झंडे सभास्थल पर अपनी बहार दिखला रहे थे, गोया दो जालिम सुबहों के उन शहीदों के खून ने लाल झंडे की सुर्खी को और चटक कर दिया हो। कुर्सी-मेज लगी हुई थी। कुर्सी के पीछे एक स्वयंसेवक एक बड़ा-सा लाल झंडा लिये खड़ा था। पास ही गैस का एक हण्डा रखा हुआ था। हजारों मजदूरों का मजमा इकट्ठा हो गया था। पास-पड़ोस की दुकानों के लोग भी दुकानें बन्द करके सभा में आ गये थे। मैदान भरकर भीड़ सड़क पर आ गयी, फिर सड़क भी भर गयी, फिर सड़क की दूसरी ओर का छोटा-सा मैदान भी भर चला। सड़क का चलना बन्द हो गया।

इस वक्त चाँदनी अपने पूरे उभार पर थी। यह भीड़ जो सभा में इकट्ठी हुई थी, भीड़ नहीं, एक फौज थी जो नये बिहान को हाथ पकड़कर खींचकर अँधेरे में से बाहर ला रही है।

'मीटिंग की कार्रवाई अब शुरू होती है'—इन शब्दों के साथ मीटिंग की कार्रवाई शुरू हो रही थी, लेकिन मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। वहाँ खड़े-खड़े, सभास्थल के उस भराव और लोगों के चेहरों का भाव देखकर मुझे न जाने क्यों वह जगह एक बहुत चौड़े आँगन-सी जान पड़ी, जिसमें एक ही परिवार के लोग इकट्ठा होकर ममता और प्यार की बातें कर रहे हैं। धरती का वह उतना कोना मुझे बाकी दुनिया से बिलकुल अलग चीज जान पड़ा, और मेरा ध्यान सभा से हटकर बीसियों बरस पहले के उन दिनों पर चला गया जब कि मैं छोटा था, मेरे पिता जीवित थे, हम लोग गाँव पर रहते थे, गाँव पर हमारे घर का आँगन ही गाँव-भर में सबसे बड़ा था जो पीली मिट्टी से लोपा जाने पर इतना समथल और इतना चिकना हो जाता कि उस पर दौड़ने का अनायास जी होता और जब चाँदनी छिटकी होती तो वह आँगन स्वर्ग का टुकड़ा जान पड़ता (सिर्फ एक कसर रह जाती कि आसमान से परजाते के फूल न झरते) और बस यही जी चाहता कि हमेशा ऐसी ही चाँदनी छिटकी रहे और कभी मदरसे न जाना पड़े और मैं अपने साथियों के साथ यों ही अपना वह प्यारा खेल खेलता रहूँ जिसमें हम सब गोलाकर बैठ जाते और फिर एक मिनट बाद हममें से किसी की पीठ पर गाँठदार रूमाल के कोड़े पड़ने लगते—

मेरा मन झटका खाकर फौरन करीम और उन दूसरे साथियों पर चला गया जिनकी पीठ और सिर पर चोटें पड़ी थीं—गाँठदार रूमालों की नहीं, राइफल के कुन्दों की और संगीनों की (हँसता हुआ कृपाराम !) और फौजी बूटों की (सोलह साल का लड़का मूनिस, उसकी पसलियाँ क्या चोट बर्दाश्त कर सकी होंगी, पता नहीं अब उसका जी कैसा है...) ! बचपन के उन खिलाड़ियों और इन मौत के खिलाड़ियों कितना अन्तर है...

मेरे कानों में आवाजें कुछ पड़ रही हैं मगर तसवीरें कुछ और बन रही हैं। चर्चा हो रही है मूनिस और रामनाथ की, लेकिन मुझे लग रहा

है कि मेरे गाँव का वह आँगन, मेरे स्वर्ग का वह टुकड़ा मेरे दिल की गहराइयों में समाता और इस कोने से लेकर उस कोने तक तमाम जगह को घेरता फैलता चला जा रहा है ; पूनम की चाँदनी पूरे आँगन में दूध की तरह फैली हुई है और आँगन के दक्खिनी-पच्छिमी नहीं दक्खिनी-पूरबी कोने में एक परजाते का पेड़ है जिससे फूल लगातार झर रहे हैं और आँगन फूलों से भर उठा है और चाँदनी फूलों में और फूल चाँदनी में खो गये हैं

[हंस, जनवरी-फरवरी'४६]

कल तेरही भी हो गयी थी। आज मातमपुर्सी के लिए आये हुए मेहमान बिदा हो रहे थे। कृष्णबहादुर और उनकी पत्नी रजवन्ती आपस में बात कर रहे थे।

रजवंती ने पास ही बैठी हुई पार्वती को सुनाकर बहुत तेवर के साथ कहा—हमारे भी तो लड़के-बाले हैं......

कृष्णबहादुर के मुँह में दही जमा हुआ था। थोड़ी देर तो उनके मुँह से बोल ही न फूटा, फिर बहुत उधेड़बुन में पड़े हुए आदमी की तरह सर खुजलाते-खुजलाते दबी जबान में बोले—देखो न, घर में जगह ही कितनी है।

रजवन्ती ने और गरम पड़ते हुए चमककर कहा—कितनी जगह है का ठेका हमने नहीं लिया है। हमारा भी इस घर में हक है। और फिर जीजी को जगह चाहिए भी कितनी। घर में खाने को कम होता है तो कोई भूखा तो नहीं न सो जाता, सब उसी में बाँट-बूँटकर खाते हैं, कि नहीं खाते ?

कृष्णबहादुर इस अकाट्य युक्ति के आगे तुरन्त परास्त हो गये। पार्वती के पास जाकर बोले—भौजी...

पार्वती ने बीच में ही बात काटते हुए कहा—मैंने सब बातें सुन ली हैं। प्रेमू की माँ ठीक ही कहती है। आखिर तुम्हारे भी तो लड़के-बाले हैं।

पार्वती बरौठे में खड़ी-खड़ी अपने देवर-देवरानी के इक्के को जाते बहुत देर तक देखती रही। इक्का आँख से ओझल हो गया, उसके भी बहुत देर बाद तक। राधा, सीता, पुच्ची बरोठे के आगे नीम के नीचे खेल रहे थे। देवी ऊपरवाले कमरे में था। बच्चों को आवाज देती हुई पार्वती घर के अन्दर दाखिल हुई। नीचेवाली कोठरी में देवर-देवरानी का अधसेरा अलीगढ़ी ताला लटक रहा था। दूरदर्शी कृष्णबहादुर और उनकी पत्नी गमी की खबर पाकर आते समय शहर से ही ताला लेते आये थे।

आधी खाट के बराबर बरोठा, खाट-डेढ़ खाट का आँगन, एक खाट बराबर कोठरी और उसके ऊपर दूसरी कोठरी नीचेवाली ही के बराबर—यही वह घर है, जिसमें कृष्णबहादुर ने अपना बखरा लगाया है। पार्वती के ससुर ने लड़ाई के पहले इसे तीन सौ रुपये मे खरीदा था। वे मरे तो उन्हें इस बात का सन्तोष था कि वे अपने दोनों लड़कों के लिए एक घर छोड़े जा रहे हैं। जरूर उनकी अक्ल सठिया गयी थी, नहीं तो भल। इस घरौंदे का इतना गुमान करते! और सच तो यह है कि इस घर से पार्वती और राजा को उतना आराम नहीं मिला, जितनी तकलीफ। कृष्णबहादुर और रजवंती को हमेशा यही डर बना रहता कि राजा कहीं पूरा मकान न हथिया ले। दोनों इस ओर से इतने सतर्क रहते कि आखिरकार राजा को ऊबकर कानपुर चले जाना पड़ा। राजा कानपुर चला गया तो कृष्णबहादुर भी अलाहाबाद चले आये।

राजा कई बरस कानपुर रहा, लेकिन वहाँ उसकी सेहत कभी ठीक न रही, और उसकी सेहत तो जैसी कुछ थी, थी ही, पार्वती को हरदम खाँसी-जुकाम छेंके रहता।

पानी बदलने के ख्याल से दोनों थोड़े दिन से हादीपुर चले आये थे।

२

अब पार्वती बिलकुल अकेली थी—जैसा कि आदमी मौत के दिन होता है। पर मौत भी उसे कहाँ पूछती। दूसरी चीजों ही की तरह मुँह-माँगी मौत भी तो मुँहताजों को नहीं मिला करती। अपने हाथ से वह अपनी जान नहीं ले सकती—बच्चों ने वह आसान रास्ता बन्द कर दिया है। उनको दुनिया में लाने की जिम्मेवारी उसी की है। उस जिम्मेवारी से वह मुकरेगी नहीं, मुकर नहीं सकती, मुकरेगी तो वहाँ कौन मुँह दिखायेगी। लेकिन जिये भी तो कैसे, दुनिया जीने दे तब तो।

पार्वती को ऐसा लग रहा था कि उसे एक अथाह सागर में ढकेल दिया गया है जिसमें सब जगह बस हाथी बराबर पानी है, और जिसके कूल-किनारे का कहीं कोई पता नहीं। जिधर आँख उठाती है, उधर मीलों तक पानी, पानी, पानी। और पानी भी वह नहीं जो सहज ढंग से कल-कल करता बहता है, बल्कि घमंड, जोश और गुस्से में उबलता हुआ बेअख्तयार पानी जिसकी लहरें दो-दो पुरसा ऊपर उठती हैं और फिर एक हुम्म् के साथ सभी कुछ अपने पेट में रख लेती हैं।

राजा की मौत ने पार्वती को घर की कोठरी से निकालकर सड़क पर ला खड़ा किया। पार्वती को लगा कि वह जिन्दगी में पहली बार दुनिया देख रही है। अब तक तो कोई और उसकी ओर से भी दुनिया देखा करता था। आज पार्वती ने दुनिया को देखा और पहचाना—जिन जीव-जन्तुओं की कल्पना करके वह डरा करती थी, उन्हें ही उसने जीवन के चौराहे पर आते-जाते देखा। राजा की मुहब्बत ने अब तक उसे अँधेरे में रखा था। अब वह प्रकाश में थी, मगर कितना निर्मम प्रकाश! थपेड़े अब उसके शरीर पर लग रहे थे, वही थपेड़े जिन्हें सहते-सहते राजा के जीवन की डोंगी डूब गयी, जिन्होंने डोंगी की चिप्पियाँ-चिप्पियाँ छितरा दीं।

पार्वती के पास अब कुछ न था। जो कुछ गहना-गुरिया था, वह राजा की बीमारी में उठ गया। माथे का टीका जिसे वह पहले सोहाग की

निशानी समझकर बड़े जतन से रखे हुए थी, वह किरिया-करम में निकल गया। किसी ने कानी कौड़ी से भी मदद नहीं की। जब एक पेट के भाई-बहन अपने नहीं हुए तो दूसरे को बुरा-भला कहने से फायदा। कृष्ण-बहादुर का तो भाई मरा था, फूलकुँअर का तो भाई मरा था, उसका काम अच्छी तरह हो, इसमें उनकी शोभा भी तो थी। लेकिन सब मुँहदेखे की प्रीत करते हैं, आदमी की आँख मुँदी नहीं कि सबने आँखें फेर लीं, जैसे कभी की जान-पहचान भी न हो। कृष्णबहादुर यह कहने को तो हो गये कि भैया का क्रियाकर्म अच्छी तरह होना चाहिए, लेकिन उसके लिए उन्होंने एक रुपया भी जेब से निकाला? भैया का क्रियाकर्म अच्छी तरह होना चाहिए, क्योंकि वे कृष्णबहादुर के भाई थे। लेकिन कृष्णबहादुर को इसकी कौन फिक्र पड़ी थी कि पता लगाते कि भौजी का हाथ कितना तंग है। सुनते हैं, फूलकुँअर ने अपने पति से बात चलायी थी, लेकिन पति देवता ने ऐसे कसकर डाँट बतायी कि बेचारी फूलकुँअर सिटपिटा गयी। उन्होंने शायद कहा—तुम क्यों दुनिया की पंचाइत में पड़ती हो। तुम्हीं को सबसे ज्यादा भाई का प्यार उमड़ा है, कृष्णबहादुर तुमसे कम सगे हैं?

फूलकुँअर ने फिर शायद जवाब देने के लिए, अपनी बात समझाने के लिए मुँह खोला तो मुंसरिम साहब आग बबूला हो गये, औरत की यह मजाल कि अपने आदमी से जबान लड़ाये। गरजे—चुप रहो। मैंने तुम्हें हजार बार समझा दिया है नन्हें की अम्माँ कि तुम मेरे मुँह न लगा करो, मुझे यह बात बिलकुल पसंद नहीं।

मुंसरिम साहब सोचने लगे थे कि उनके दफ्तर का वह अधेड़ मुंशी कितना समझदार है जो रोज रात को जूतों से अपनी बीबी की पूजा करता है।

अब राम जाने, फूलकुँअर ने अपने पति से बात चलायी भी या सब गप्प है, मगर पार्वती को कहीं से कुछ मिला नहीं। यों सुनने को तो यह भी सुना था कि कृष्णबहादुर ऐसे मक्खीचूस नहीं हैं कि एक पेट के भाई के दाहकरम के मामले में फिसड्डी रह जायँ, लेकिन बेचारे क्या करें, रज-वंती के आगे उनकी एक नहीं चलती।

मान-इज्जत का मामला था, पार्वती ने अपना माथे का टीका बंधक रखा। जब वह उसे लेकर माताप्रसाद पटवारी के यहाँ जा रही थी तब उसके दिल में आग जल रही थी। आग बहुत असह्य हो गयी तो आँखों में आँसू छलछला आये। पार्वती ने मन में कहा—उनकी बीमारी में भूखे रहकर भी मैंने इस टीके को बचाया था......पर असली टीका जब नहीं बचा सकी, जब वही पुँछ गया तो इससे क्या हासिल ?...लेकिन पार्वती, तू भूलती है। भूल गयी, उन्होंने कितने प्यार से तुझे ये चीजें लाकर दी थीं, उस रात तू सोयी नहीं थी, इतनी मगन थी तू, वे भी नहीं सोये थे, वे तेरे मुँह पर टकटकी लगाये जागते पड़े थे, तेरे बिस्तर में, तेरी बगल में...उनका शरीर तुझसे छू रहा था। पार्वती को एक झटका-सा लगा और भावधारा फिर चल पड़ी। उसके मुँह से अस्फुट स्वर निकला —हाँ...आज उनका शरीर मुझे नहीं छू रहा है...अच्छा है यह टीका भी उन्हीं के साथ स्वाहा हो जाय। लेकिन तब उसे लगा कि वह अपने संग बहुत कठोर होती जा रही है और उसने अपने आपको समझाया—इन्हें बेचने थोड़े ही जा रही हूँ, मैं बंधक रखकर रुपये ले आऊँगी, फिर रुपये होंगे तो छुड़ा लाऊँगी। मैं भला इनको हाथ से जाने दूँगी। उसके भीतर कोई हँसा, उसके इस सरल आत्म-विश्वास पर, उसकी मूर्खता पर...फिर रुपये होंगे तो—फिर रुपये होंगे कभी ? कौन देगा ? कृष्णबहादुर ? फूल-कुँअर ? कहाँ से आयेंगे रुपये ?...पार्वती का मन असीम खिन्नता से कड़वा हो गया। कुछ रुककर उसे ध्यान आया—देवी अब जल्दी ही कमाने लगेगा। देवी हमारे दुख हरेगा, बंधक छुड़ायेगा। देवी डिप्टी होगा, साहब होगा। सब कहते हैं, देवी पढ़ने में बहुत तेज है।

देवी पार्वती का बड़ा लड़का है। तेरह साल का है। कायस्थ पाठशाला में आठवीं में पढ़ता है। अपर प्रायमरी से लगाकर लगभग सदा वजीफा पाता रहा है। उससे सबको बड़ी-बड़ी उम्मीदें हैं। अपने ही बलबूते से वह पढ़ा है, अपने ही बलबूते से वह कुल की नाक रखेगा।

...रखेगा जब रखेगा। अभी तो वह छोटा है।

३

आखिर करधनी बेचने की भी नौबत आ गयी। पार्वती पहले कभी करधनी न पहनती थी, लेकिन पुच्ची के होने के बाद से पहनने लगी। पुच्ची के होने में तो समझो उसके प्राण गले में अटक गये थे। पुच्ची पेट चीर-कर निकाला गया था। उस वक्त तो खैर सब ठीक-ठाक हो गया, टाँके-वाँके लगा दिये गये, लेकिन तबसे हमेशा कमर में दर्द रहने लगा। चीज-बरन धरने-उठाने का कोई बड़ा काम करती या कुछ नहीं, यों ही खाली पुरवा बहती, तो वह पूरा हिस्सा चिलक उठता, जैसे मोच खाया हुआ पैर उल्टा-सीधा पड़ जाने पर चिलक उठता है। तभी उसकी एक सहेली ने उसे करधनी पहनने की सलाह दी थी। उसके भी ऐसी ही तकलीफ हुई थी और करधनी पहनने से ही उसकी कमर का दर्द गया था।

लेकिन असल में करधनी पहनने से कमर का दर्द जाता नहीं, थमा रहता है। यही तो वजह है कि अब भी, यानी आप यह समझिए कि पुच्ची छः बरस का है, जब पार्वती करधनी उतार देती है तो कुछ घंटों के बाद ही मीठा-मीठा दर्द शुरू हो जाता है। इसी डर के मारे करधनी वह कभी उतारती नहीं।

एक करधनी की कमाई कै दिन चलती। आठ-दस दिन में खा पकाकर फिर वही भूखों मरने की नौबत।

एक रोज की बात है। तहसीलदार सक्सेना साहब पार्वती के घर के रास्ते जा रहे थे। वहीं नीम-तले सीता पुच्ची वगैरह खेल रहे थे। उसी वक्त एक लैयाकरारी, गुलाबी पट्टी वगैरह का खोमचेवाला भी उधर आ निकला और लड़कों को देखकर और भी जोर-जोर से चिल्लाने लगा। बच्चे तो फिर भी बच्चे, उनका जी ललचा। वे ललचायी आँखों से पास में खड़े खोमचेवाले को ताक रहे थे। सक्सेना साहब को उन पर तरस आ गया। पुच्ची को बुलाकर पूछा—लोगे?

पुच्ची न हाँ कह सका, न ना, खामोश खड़ा रहा। सक्सेना साहब ने दुबारा पूछा—पट्टी खाओगे?

पुच्ची के मुँह पर तो ताला जड़ा हुआ था। लेकिन सीता ने कुछ झिझकते हुए आखिर कह ही दिया—हाँ, कल सवेरे से कुछ नहीं खाया है।

पुच्ची का चेहरा भी चमक उठा, अपने दिल की जो बात वह जबान पर नहीं ला पा रहा था, उसे सीता ने कह दिया था।

सीता की बात से सक्सेना साहब को तमाचा-सा लगा : इतने जरा-जरा से बच्चे भी भूखे रहते हैं। फिर उनका अफसर जाग उठा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।

खोमचेवाले से बहुत-सी चीजें सीता को दिलवाते हुए बड़े प्यार के साथ बोले—बेटी, तुम्हारी माँ है ?

सीता ने कहा—वह रही।

सक्सेना साहब ने पीछे घूमकर देखा—पार्वती बरोठे में खड़ी थी। चिन्तित, उदास। बच्चे किससे बात कर रहे हैं, देखने निकल आयी थी।

पार्वती के अपरूप सौन्दर्य ने सक्सेना साहब को हक्का-बक्का कर दिया था।

अपरिचित आदमी को देखकर पार्वती लौट ही रही थी जब सक्सेना साहब ने आवाज दी—जरा सुनिए।

पार्वती ठिठककर रुक गयी। सक्सेना साहब उसकी ओर आये और बोले—मैं अभी हाल ही में यहाँ आया हूँ, इसलिए मुझे किसी चीज की जानकारी नहीं है...

पार्वती के नंगे हाथों, सूनी माँग, खाली माथे, अवसन्न मुखमुद्रा और खामोशी ने उनकी बात का मिलकर जवाब दिया।

सक्सेना साहब अपनी बात पर स्वयं ही लजाते हुए बोले—मैं भी कितना बेवकूफ हूँ।...मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ ?

पार्वती ने घुटी-घुटी आवाज में कहा—जी नहीं, सब ठीक है। आपकी बड़ी मेहरबानी है।

सक्सेना साहब ने कहा—ऐसा न कहिए। मुझसे अगर आपकी कोई मदद हो सके...

पार्वती ने फिर कहा—आपकी मेहरबानी है। मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है।

और अंदर चली गयी।

सक्सेना साहब थोड़ी देर खड़े रहे, फिर अपने मकान की ओर चल पड़े। उनके अफसरी अभिमान को ठेस लगी थी। और जगह तो लोग हरदम हाथ बाँधे खड़े रहते थे, और आज एक औरत उन्हें दरवाजे पर खड़ा छोड़कर घर के अंदर चली गयी। उन्हें लगा कि उनकी तौहीन हुई है, लेकिन उन्हें विश्वास न हुआ कि इतनी दुखी औरत किसी को तौहीन करने की सोचेगी।

बाबू चन्द्रिकाप्रसाद पेशकार सक्सेना साहब को बतला रहे थे—हुजूर, मुसम्मात पारबती राजबहादुर की बेवा है। अभी दो महीने हुए, उसका शौहर मरा है। अच्छा लड़का था, बहुत बाअदब, बहुत मुहज्जब। कायस्थों में तो आप जानते ही हैं, यह बात आमतौर पर पायी जाती है।

बाबू चन्द्रिकाप्रसाद खुद कायस्थ थे, हाकिम कायस्थ था, मुसम्मात पारबती का खाविन्द कायस्थ था, इससे अच्छा सुवर्ण संयोग और क्या हो सकता था! बस, बाबू चन्द्रिकाप्रसाद ने जड़ ही तो दिया।

उनकी चोट निशाने पर बैठी थी। सक्सेना साहब को हल्का-सा नशा चढ़ने लगा। बोले—अच्छा तो मुसम्मात पारबती कायस्थ है! साहब, बला की खूबसूरत है। आपसे क्या छिपाना, आप भी तो कायस्थ हैं, हम लोगों में इतने खूबसूरत लोग जरा मुश्किल से मिलते हैं। हम तो उसे बिरहमन-छत्री समझते थे।

सक्सेना साहब को यह गवारा नहीं कि कोई उनकी बात काटे, लेकिन इस वक्त अपनी बात कटना उन्हें भला मालूम हुआ। कायस्थ कौम की बड़ाई आखिर को उनकी बड़ाई भी तो थी; इसके अलावा यह संतोष भी कुछ कम न था कि मुसम्मात पारबती जैसी परी उन्हीं की कौम का एक रतन है।

अपने विचारों में डूबे हुए सक्सेना साहब थोड़ी देर खामोश रहे, फिर बोले—पेशकार साहब, मैं मुसम्मात पारबती की मदद करना चाहता हूँ। बेचारी बहुत तकलीफ में है...

बाबू चन्द्रिका प्रसाद ने कहना चाहा: जब हुजूर की नजरे इनायत... लेकिन सक्सेना साहब ने बीच में ही बात काट दी—देखिए, वह सब कहने की जरूरत नहीं। बेचारी बहुत मुसीबत में है और मैं उसकी मदद करना चाहता हूँ। उसके लिए मैं आसानी से महीने में बीस पच्चीस रुपया निकाल सकता हूँ। लेकिन उसमें एक पेंच है पेशकार साहब।

पेशकार साहब ने मामूली से ज्यादा बुद्धू बनते हुए पूछा—वह क्या हुजूर?

हुजूर ने कहा—वह पेंच यह कि अगर मैं अपनी ओर से मुसम्मात पारबती की मदद करूँगा तो यह जरा ठीक न होगा। आप तो जानते ही हैं, उँगली उठानेवालों की कमी नहीं होती। मुसम्मात पारबती अभी जवान है, खूबसूरत है...आप ही बतलाइए, लोग ऐसी-वैसी बातें न बकने लग जायँगे......

बाबू चन्द्रिकाप्रसाद को आज हाकिम के मन की थाह नहीं लग रही थी। उनकी समझ में न आ रहा था कि हाकिम आखिर चाहता क्या है और उससे क्या कहें कि वह एकदम खिल उठे। अनजान नाला पार करते समय आदमी लाठी लेकर चलता है और पैर बढ़ाने के पहले आस-पास लाठी से थाह लेता चलता है जिसमें पैर किसी ऐसी-वैसी जगह न पड़ जाय। बाबू चन्द्रिकाप्रसाद ने भी अपनी पचास साल की जिन्दगी में बहुत से अनजान नाले पार किये थे। एक आज भी पार करना था। थहाते-थहाते बोले—हुजूर, मर्द की बदनामी......

साफ आसमान में जैसे यकायक बिजली कड़की। सक्सेना साहब ने बाबू चन्द्रिकाप्रसाद को जोर से डपटा—चुप रहिए, पेशकार साहब... आपके आधा से ज्यादा बाल सफेद हो चुके हैं। इस उम्र में ऐसी बात

कहना आपको शोभा नहीं देता। यह मुझे बिलकुल मंजूर नहीं कि मेरी वजह से किसी भले घर की औरत की इज्जत में बट्टा लगे।

पेशकार साहब का चेहरा डर के मारे काला पड़ गया था। पैर काँप रहे थे। अपने को बार-बार धिक्कार रहे थे, कैसी निगोड़ी बात मुँह से निकाली। तभी उन्होंने सुना, सक्सेना साहब कह रहे थे—पेशकार साहब, आप ऐसे आदमियों की फेहरिस्त बनाकर मुझे दिखाइए जो जरा खाते-पीते अच्छे हों।

पेशकार साहब ने हाकिम के सामने बिछ-बिछ जाते हुए कहा—लीजिए हुजूर, अभी लीजिए, उसमें देर ही कितनी लगती है।

और उन्होंने कान पर से कलम निकाली और जेब में से दावात और फेहरिस्त बनाने बैठ गये।

सक्सेना साहब ने कहा—फेहरिस्त में आखिरी नाम मेरा होगा। मेरे नाम के आगे पाँच रुपया लिख दीजिएगा। बाकी लोगों पर एक-एक रुपया चंदा लगाइए।

फेहरिस्त बनकर तैयार हुई तो उसमें बाबू कुलदीपनरायन मुख्तार, बाबू रघुनाथप्रसाद मुख्तार, बाबू शिवराजबली मुख्तार, बाबू कामताप्रसाद मुख्तार, मिस्टर लछमीनरायन वकील, ठाकुर यमराजसिंह रईस, ठाकुर हरनामसिंह रईस, मिस्टर वलीउल्ला डाक्टर, मौलवी एहतराम हुसैन हेडमास्टर, शेख अबदुस्समद जमींदार, मुशी भगवतीप्रसाद जमींदार, लछ-मन साव, बेचन साव, मंगली साव, राधेश्याम सराफ, रामदीन मिसिर, बाबू चन्द्रिकाप्रसाद बड़े पेशकार और मिस्टर प्रेमरतन सक्सेना तहसील-दार—ये लोग थे।

सक्सेना साहब ने बहुत गौर से उसे एक-दो बार पढ़ा और कहा—आपने बहुत उम्दा फेहरिस्त बनायी है, पेशकार साहब। और मूँछों ही मूँछों में मुस्कुराते हुए उस पर दस्तखत कर दिये। फिर एक लमहे की खामोशी के बाद बोले—अजी, आपके यहाँ तो बेशुमार वकील, मुख्तार, डाक्टर और रईस—

बाबू चन्द्रिका प्रसाद ने हाकिम की बात को बीच ही में लोकते हुए कहा—बेशुमार, हुजूर, बेशुमार...खाँचियों......यह कोई मामूली जगह है हुजूर, यहाँ तो शहर और देहात की गंगा-जमुनी बहती है—

लेकिन पार्वती के लिए तो यह गंगा-जमुनी चार महीने बहकर ही न जाने किस रेतीले मैदान में हमेशा के लिए खो गयी। सक्सेना साहब का तबादला तहसील मम्मनपुर का हो गया। उनके जाने के साथ ही पार्वती का सहारा भी चला गया। सभी दानवीरों ने निश्शंक होकर हाथ खींच लिया। अब उन्हें ऊपर से कोई कोड़े मारनेवाला तो था नहीं जिससे उनकी कोर दबती हो या जिसको खुश रखने से उनका कोई काम सधता हो, तो फिर क्या वे बेवकूफ थे जो वह बेकार का दानखाता खोल रखते जिससे किसी किस्म की कोई प्राप्ति नहीं? कोदो-सवाँ देकर वे थोड़े ही न पढ़े हैं जो अपना भला-बुरा न समझते हों। जब तक हाकिम का दबाव था, तब तक बात दूसरी थी—पानी में रहकर मगर से बैर नहीं किया जाता, और फिर इतना ही क्यों; इस सोलह गंडे के दान से हाकिम अगर हमें दिल का बादशाह समझता है तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है। हाकिम अगर खुश हो तो एक नहीं, बावन ढंग से अपनी खुशी बतला सकता है।... लेकिन अब तो वह बात न थी। हाकिम चला गया था, सूरत एकदम बदल गयी थी। ये लोग जिन्होंने हजारों रुपया पानी की तरह बहाकर और बरसों दिमाग की एड़ियाँ घिसकर तालीम हासिल की थी, ऐसे सिड़ी नहीं थे कि किसी ऐरे-गैरे की राँड को बिठालकर खिलावें। उन्हें उससे फायदा! और जब फायदा नहीं तो एक रुपया तो क्या, एक कौड़ी भी हाथ से निकालना गुनाह है। और सो भी राजा की दुलहिन के लिए! सीधे मुँह बोलती तक तो है नहीं। अपने को पद्मिनी समझती है, पद्मिनी।

समझती वह खाक-पत्थर कुछ भी नहीं अपने को, किसी तरह जी रही थी, लेकिन भले घर की लड़की थी, भले घर की बहू थी, यह जानती थी

कि आदमी की इज्जत अपने हाथ रहती है। चौबिस घंटा जागकर पहरा दो तो बचती है, पल-भर को बेखबर हो जाओ तो लुट जाती है! इसी से पार्वती किसी से न बोलती। कुछ औरतों से तो हँस-बोल भी लेती, लेकिन मर्द की छाया से भी भागती, गाँव के रिश्ते से जो भाई-भतीजे लगते, मौसा-काका लगते, उन तक से न बोलती। इसी से लोग उसे रूप-गर्विता समझते। पर बात यह न थी। पार्वती जानती थी कि चार चार शापों का बोझा ढोने के लिए उसे दुनिया से बिल्कुल अलग होना पड़ेगा। पहला शाप कि हिन्दू हुई, दूसरा शाप कि औरत हुई, तीसरा शाप कि विधवा हुई, चौथा शाप कि सुन्दरी विधवा हुई। कुल अनर्थ के ग्रह एक ही जगह ता इकट्ठा हो गये थे। किसी को लाञ्छित करने में समाज को रस आता है, और लाञ्छना की पात्री अगर एक युवती सुन्दरी विधवा हो, तब तो फिर क्या पूछना, उसके मुँह से मानों राल टपकने लगती है। हमारे समाज में विधवा के लिए लाञ्छना का सदाव्रत खुला रहता है, समाज मुक्तहस्त होकर दान करता है, जिसको जितना लेना हो, जो जितना ढो सके।

पार्वती क्या देखती नहीं, उसके क्या आँखें नहीं हैं, वह क्या अंधी है कि यह न देखे कि इन्हीं दानवीरों में कई लोग ऐसे हैं जिनके घरों में बीवियाँ हैं, जिनके चार-चार पाँच-पाँच बच्चे हैं, जिनके बाल खिचड़ी हो चले हैं और जो उससे बहुत-बहुत आशाएँ रखते हैं। वह सब जानती है, इसीलिए मानुस की गंध से भागती है।

...लेकिन तब फिर दानवीरों को भी कोई दोष नहीं दे सकता। बट्टे-खाते में कोई कहाँ तक दान दे!

और कुल बात का लुब्बे-लुबाब यह कि अब पार्वती को महीने में बाईस की जगह चार रुपया मिलता है—बाबू शिवराजबली मुख्तार १), मुंशी भगवतीप्रसाद जमींदार १), मौलवी एहतराम हुसैन १), डाक्टर वलीउल्ला १)। इसी में खाये-पकाये, जो चाहे करे।

एक बार फिर पार्वती के घर फाके होने लगे। लेकिन तभी एक बड़ा अच्छा सुयोग हाथ लगा। बाबू कुलदीपनरायन, मुंशी भगवतीप्रसाद और

मिस्टर लक्ष्मीनरायन के यहाँ एक साथ रसोई बनानेवाली की जरूरत हुई—सबकी घरवालियों का प्रसवकाल समीप था। सभी कचहरिया लोग, वक्त पर खाना मिलना ही चाहिए और घर की औरतें असमर्थ, हमेशा किसी न किसी तकलीफ में गिरफ्तार। लाचार उन्हें किसी को रखना ही पड़ा। और इस तरह पार्वती ने तीन घरों की रसोई थाम ली। इतना काफी था। सबका पेट भर जाता था।

...लेकिन यह चीज आखिर कितने दिन चलती। दो-चार दिन के हेरफार से सबके बच्चे हो गये और पन्द्रह-बीस दिन में फिर सबने अपना-अपना मोर्चा सँभाल लिया। डेढ़-दो महीने अपने पौरुष से अपना पेट भरने के बाद पार्वती फिर असहाय थी। उसके सामने फिर भूख की गुफा मुँह बाये खड़ी थी।

तब पार्वती को बाबू सोमेशचन्द्र का ध्यान आया। बाबू सोमेशचन्द्र राजा के सहपाठी रह चुके थे। फरिक एक से लगाकर उर्दू मिडिल तक गाँव में, फिर हाई स्कूल तक शहर में। उसके बाद राजा को अलाहाबाद छोड़ना पड़ा। बाबू सोमेशचन्द्र और राजा में पटती भी बहुत थी। बाबू सोमेशचन्द्र भगवतीप्रसाद जमींदार के लड़के थे और राजा एक मुहर्रिर का। दोनों में बड़ी मेल-मुहब्बत थी। धीरे-धीरे पार्वती और सोमेश की पत्नी में भी बहुत दोस्ती हो गयी। इसीलिए अपने इस सबसे गाढ़े समय में उसे सबसे पहले सोमेश की पत्नी का ध्यान आया। वह शहर में रहती है, बड़े-बड़े लोगों से उसका उठना-बैठना है, वह जरूर कोई न कोई उपाय निकालेगी। यह सोचकर उसने सोमेश की पत्नी को लिखा—

बहन,

बड़ी मुसीबत में पड़कर आज तुम्हारे सामने हाथ फैला रही हूँ। आज मेरी रोटी का कोई सहारा नहीं है। नेक तहसीलदार साहब के दबाव से जो लोग एक-एक रुपया महीना देते थे, उन्होंने भी हाथ खींच लिया है और अब मेरे लिए मरने के अलावा दूसरा रास्ता नहीं है। लेकिन चार बच्चों को इस हत्यारी दुनिया के भरोसे छोड़कर मरते भी डर लगता है।

तुम्हें पता चला ही होगा कि मैंने कुछ दिन तुम्हारे यहाँ और बाबू शिवराजबली और बाबू कुलदीपनरायन के यहाँ रसोई भी पकायी ; लेकिन फिर घर की औरतों के सोरी से निकल आने पर मेरा वह सहारा भी जाता रहा। अब तुम्हें लिख रही हूँ। अच्छे-अच्छे लोगों से तुम्हारी रसाई है, मेरे लिए कहीं किसी कोने में जगह न निकालोगी ? खाना पकाऊँगी, बच्चों की निगरानी रखूँगी और गिरस्ती के और भी जो मोटे-झोटे काम होंगे, सब करूँगी—मुझे अब कोई लाज-शरम नहीं है। मैं गोश्त-मछली, अंडा-मुर्गी के कभी पास नहीं गयी। मुझे ऐसी चीजों से हमेशा घिन लगती रही है, लेकिन मैं अब वह सब पकाने को भी तैयार हूँ। तकलीफ पड़ने पर आदमी को सभी कुछ करना पड़ता है बहन, ठसा दिखाने से काम नहीं चलता ! मैं तो बस किसी भलेमानस के घर में एक कोठरी में रहकर जिन्दगी गुजार देना चाहती हूँ ; बस इतना चाहती हूँ कि मेरे छोटे-छोटे लड़के बड़े हो जायँ। बहन, मुझ बिपत की मारी की रच्छा करो। मेरे अपने जो थे, पराये हो गये। बाबू किसुनबहादुर, मेरे देवर, एक पाई के देनदार न हुए। बरसात में घर चूने लगा था, मैंने उन्हें सँदेसा भिजवाया कि घर चूने लगा है, आकर मरम्मत करा जायँ, मेरे पास पैसे नहीं हैं, नहीं मैं ही उसकी मरम्मत करवा लेती। जानती हो, उनका क्या जवाब आया—घर के ऊपरी हिस्से से हमें कोई मतलब नहीं, वह चाहे रहे, चाहे जाय।... देवरानी जी तो और विष की गांठ हैं। बीवी (फूल कुँअर) तो कुछ करना भी चाहती हैं, लेकिन अपने दुलहे के आगे उनकी एक नहीं चलती। और वह एक नंबर का मक्खीचूस है। मैं तो जान गयी कि दुनिया में कोई किसी का नहीं होता, सब हित नेत देखने के हैं।

—पार्वती

जिस दिन सोमेश की पत्नी को पार्वती का खत मिला, उसी दिन रायबरेली से उसकी देवरानी श्यामा आयीं थीं। कोई नहान पड़ा था जिसमें प्रयाग नहाने का ही खास महातम था। श्यामा नेम-धरम की बड़ी पक्की थी। इतनी कम उमर से ही उन्होंने ये तमाम व्रत-नहान कैसे गह लिये,

पता नहीं, लेकिन थीं वह बहुत पक्की। लेकिन बस इसी में पक्की थीं वह। बाकी तो न घर साफ रखने का सहूर, न गिरस्ती चलाने का, न बच्चों को नहलाने धुलाने का—और होने को तो परमात्मा की दया से उनके छः बच्चे थे। और बच्चे कैसे, दुनिया से न्यारे। बुरी तरह शैतान, गाली बकनेवाले, बात-बात पर एक दूसरे का मुँह नोचनेवाले। दिन-भर सब आपस में मार-पीट करते और पिनपिन रोते। घर एकदम बिजबिजाया करता, कोई चीज ठिकाने से रखी न मिलती और कूड़े करकट का घर में अटम लगा रहता—वह गंदगी, वह शोर-गुल, वह गाली-गुफ्ता, वह मारपीट कि खुदा की पनाह।

श्यामा कुछ तो स्वभाव से ही गुस्सैल और चिड़चिड़ी थी, अब इस जिन्दगी में पड़कर और भी हो गयी थी।

सोमेश की पत्नी ने सोचा—अकेली जान, बेचारी कैसे इतने बच्चों को सँभाले, इसी मारे घर अलग अपने नाम को पड़ा रोया करता है। इसके साथ अगर कोई औरत रहने लगे तो इसे बड़ा सहारा हो जाय। तभी पार्वती की चिट्ठी मिली। राजा की दुलहिन घर गिरस्ती के काम में कितनी निपुण है, यह सोमेश की पत्नी से छिपा न था। गरीबी में यों भी फूहड़पन के लिए कम गुंजाइश रहती है, यही सब समझकर उसने श्यामा से बात चलाने की सोची।

—राजा की दुलहिन को तो तुम जानती होगी, प्रकाश की अम्माँ?

—वही हादीपुरवाली?

—हाँ।

—तो?

—तुम जानती ही होगी, उसका आदमी मर गया?

—हाँ, वह तो तभी सुना था।

—बेचारी आजकल बड़ी तकलीफ में है, रोटी के लाले पड़े हुए हैं, चार बच्चे भी हैं उसके। एक तो खैर वजीफा पाता है और यहीं कायस्थ पाठशाले में पढ़ता है। तीन छोटे-छोटे बच्चे उसके साथ हैं। उन्हीं को पालने का मोह उसे जिन्दगी से चिपकाये है।

अब श्यामा को लगा कि कहानी जरा दूसरा रंग पकड़ रही है। बोली—माँ का हृदय ऐसा ही होता है जीजी और जो आराम तकलीफ की बात कहो, तो जिन्दगी में किसे आराम है। अब मुझी को देखो। तुम्हारे लाला इतने अच्छे आदमी हैं। परमात्मा की बरकत से घर में किसी चीज की कमी नहीं है, खाने-पीने से लेकर पहिनने-ओढ़ने तक, जावत् चीज सब घर में भरी पड़ी है। कुछ लोगों को भगवान् धन-दौलत तो देता है, लेकिन उसका भोगनेवाला नहीं देता, माँ बाप सन्तान का मुँह देखने के लिए तरस जाते हैं, मान-मनौती करते हैं, तीरथ-नहान करते हैं, हरसू बरम जाते हैं, सब करते हैं, लेकिन सन्तान का मुँह देखना उन्हें नहीं नसीब होता। करमफल में ही जब सन्तान नहीं तो आयेगी कहाँ से, बोलो!... भगवान् की दया से हमें सन्तान का सुख भी है, तुम्हारे छः बच्चे खेल रहे हैं। लेकिन तब भी मेरा जीवन क्या सुखी है? अरे राम कहो, वही हरदम की हाय-हाय। इसी से तो गियानी लोग संसार को दुख की गठरी कहते हैं।

इस लंबी वक्तृता ने सोमेश की पत्नी के पैर उखाड़ दिये थे। पर राजा की दुलहिन का उदास चेहरा उसकी आँखों में घूम रहा था। और उसने यह भी देखा कि भगवान् की दया से श्यामा की कोख फिर फलनेवाली है, मुमकिन है, उसे इस वक्त किसी मददगार की जरूरत मालूम पड़े। उसने फिर हिम्मत की—तुम उसे अपने यहाँ क्यों नहीं रख लेतीं? खाना भी पकायेगी, बच्चों की देखभाल भी करेगी, और जो काम बताओगी करेगी, पड़ी रहेगी। उसे तो बस खाने-कपड़े से मतलब है, ऊपर से दो-तीन रुपया भी दे दोगी तो बहुत है।

श्यामा ने थोड़ा इतराकर, थोड़ा मटककर कहा—राजा की दुलहिन रहेगी तो मैं अपने हाथ से पानी लेकर न पिऊँगी।

सोमेश की पत्नी को लगा जैसे किसी ने उसकी छाती में घूँसा मार दिया, थोड़ी देर को उसका होश जैसे खो-सा गया। दूसरे ही क्षण सारी बात उसके आगे दर्पन की तरह साफ थी—श्यामा के यहाँ किसी स्वाभिमानी

औरत की गुजर नहीं थी। उसने बस इतना कहा—जाने दो, मैंने तो यों ही कहा था।

४

शाम के चार साढ़े चार बजे होंगे। शहर से लारी आ गयी थी। पार्वती का बड़ा लड़का देवी लारी से उतरकर घर पहुँचा। राधा, सीता, पुच्ची कोई नहीं दिखायी दिया। यों वे उसे हमेशा नीम के नीचे खेलते मिला करते थे। घर खुला हुआ था, नीचेवाली कोठरी मे चाचाजी का अधसेरा ताला लगा हुआ था, पैसों से हीन जीवन की तरह अचल, पैसेवालों की तरह क्रूर। देवी की माँ बरोठे में नहीं थी, आंगन में नहीं थी। देवी का माथा ठनका। उसने कई बार आवाज दी, अम्माँ, अम्माँ। कोई जवाब नहीं। देवी ने सोचा, अम्माँ ऊपर की कोठरी में होंगी। कपड़ा-वपड़ा सीने का कुछ काम मिल गया होगा। वह जगह-जगह से दरकी हुई और एकदम खम्भे की तरह खड़ी सीढ़ी पर सँभाल-सँभालकर पैर रखता हुआ ऊपर पहुँचा। कोठरी का दरवाजा बंद था। देवी ने फिर आवाज दी, अम्माँ-अम्माँ, लेकिन कोई जवाब नहीं। तब उसने जोर से दरवाजा भड़भड़ाना शुरू किया। दरवाजा खुला। माँ को पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल खड़ा देखकर देवी ने कोठरी में घुसते हुए कहा—तुम्हें क्या हो गया है अम्माँ, तुम बोलतीं क्यों नहीं?

पार्वती फिर भी कुछ न बोली, उसकी आँख से आँसू अलबत्ता झरने लगे।...और फिर वह खड़ी न रह सकी, उसे गश आ गया। तेरह साल के देवी ने माँ को गिरने से बचाते हुए देखा—

छत की कड़ी से अम्माँ की फटी हुई धोती रस्सी के समान झूल रही थी। धोती जहाँ खत्म होती थी वहीं पर अपटु हाथों ने गाँठ लगाकर फंदा बनाया था...

तेरह साल के लड़के देवी ने यह दृश्य देखा और उसी वक्त मर गया। जो आदमी अपनी माँ का सिर गोद में लेकर उसके छोटे से, पीले, मुर्झाये

हुए चेहरे पर पानी के छींटे मार रहा था, वह देबी नहीं, तैंतालीस साल का एक अधेड़ आदमी था...

देबी माँ के चेहरे पर पानी के छींटे मार रहा था और सोच रहा था—यहाँ से सिर्फ पन्द्रह मील दूर चाचाजी और बुआ रहती हैं। मैंने अपनी आँखों से उनके घर को, उनके बच्चों को, उनके रहन-सहन को देखा है। यहीं इसी गाँव में न जाने कितने वकील, डाक्टर, मुख्तार, रईस, जमींदार रहते हैं—

इसके आगे ही असली रुकावट थी। देबी सिर हिला-हिलाकर यह मानने से इन्कार करता था कि सभी आदमियों के दिलों पर भिश्ती की मशकवाली मुर्दार खाल मँढ़ी हुई है। लेकिन उसका सिर हिलकर भी न हिलता था, क्योंकि उसकी गोद में उसकी बेहोश माँ का सिर था और एक गज से कम दूरी पर धोती का फाँसीनुमा फंदा लटक रहा था—पतली, कोनों पर मुड़ी हुई, लालटेन टाँगनेवाली काली सलाख की तरह।

[नया साहित्य—९]